सबला

वर्ष 9 : अंक 3 जागोरी, नई दिल्ली अगस्त-सितम्बर 1997

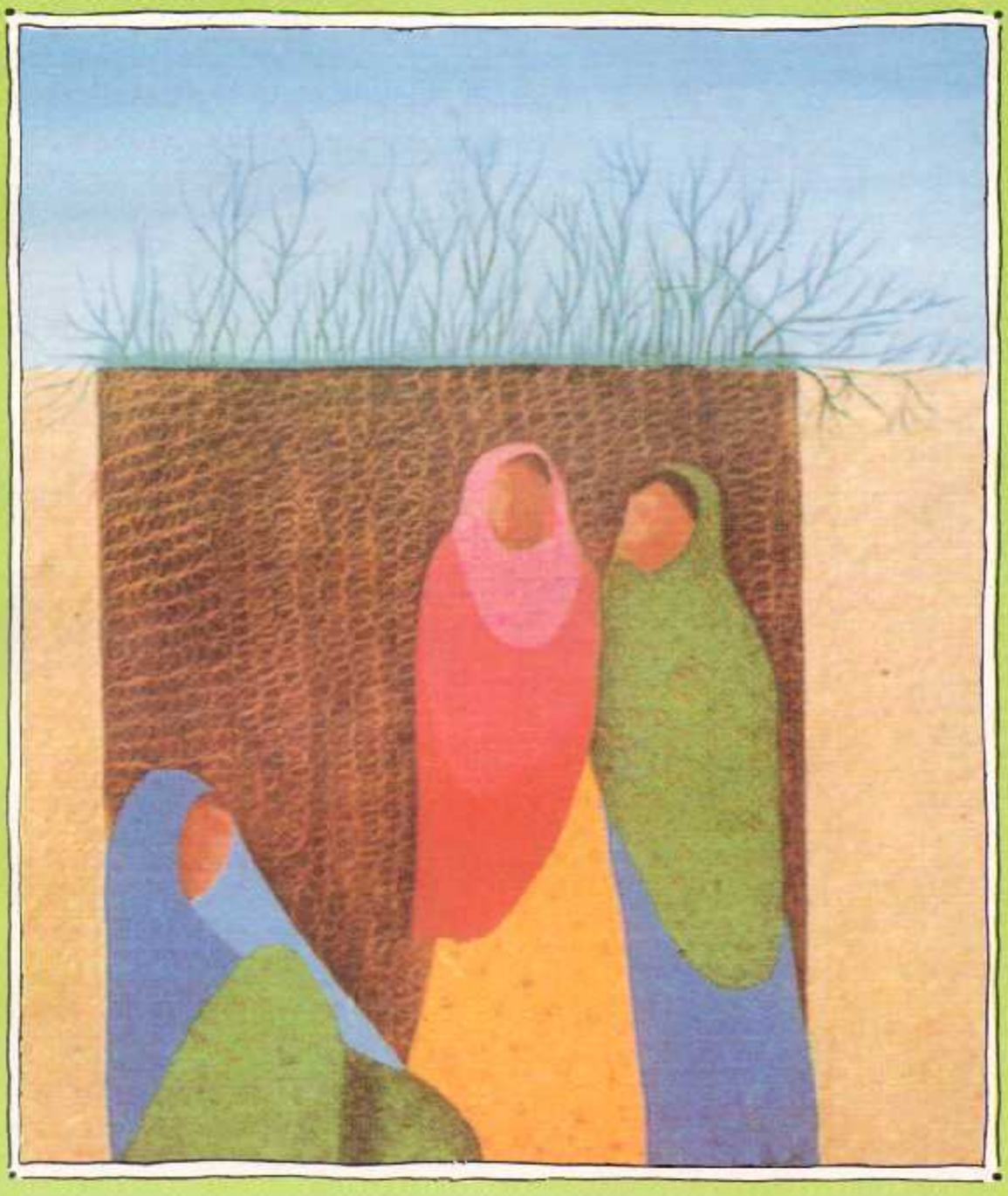

संपादक समूह
कमला भसीन
शारदा जैन
सुनीता ठाकुर
वीणा शिवपुरी
जुही जैन

सहयोग
जागोरी समूह

चित्रांकन
उषा शर्मा (मुखपृष्ठ))
नीलम
राजेश

प्रकाशन
गीता भारद्वाज, जागोरी

वितरण
प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका
शिक्षा विभाग, मानव संसाधन
मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा
अनुदानप्रदत्त, सुश्री गीता भारद्वाज
(जागोरी, सी-54 साउथ एक्सटेंशन-II,
नई दिल्ली-110049) द्वारा प्रकाशित।
वितरण कार्यालय, 1, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002। इन्द्रप्रस्थ प्रेस
(सी.बी.टी.), 4, बहादुर शाह जफर
मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात 1

लेख

मीराबाई–एक ऐसी नदी जो बांधी न जा सकी –कमला भसीन 3

...और शहनाई गूंज उठी –मणिमाला 7

स्वराज का सपना –सुनीता ठाकुर 10

टिहरी सफर गांव का –सीमा आभा 13

महिला समाख्या: शक्तियात्रा –वीणा शिवपुरी 20

'नुशू': औरतों की अपनी भाषा –जुही 25

कहानी

अपनी-अपनी खुशबू –विजयदान देथा 15

पिंजरे का पंछी –मृदुला 23

मेरी कहानी–तुम्हारी कहानी –जुही 30

कविता

बदचलन –सीमा श्रीवास्तव 18

आकांक्षा –सविता वैद्य 18

एक द्वार –स्नेहमयी चौधरी 19

प्रश्न –सुनीता ठाकुर 19

क़ानून और अधिकार

न्याय की लड़ाई में फतह –वीणा शिवपुरी 27

स्वास्थ्य

घरेलु नुस्खे 33

हमारा पन्ना

खिलाड़ी अम्मा –कमला भसीन 35

चतुर बेटी –शशि पाठक 35

हमारी बात

एक बार फिर सबला की बारी आई है। कुछ कर दिखाने का मौका मिले तो हम क्या नहीं कर सकते। पंचायतों में 33 प्रतिशत आरक्षण का अधिकार हमें दिया गया और हमारी बहनों ने साबित कर दिखाया कि वे मात्र मुहर नहीं है—अपने बूते पर हम हर काम कर गुजर सकते हैं। पंचायती राज में महिला आरक्षण की सफलता के बावजूद लोकसभा और विधानसभा में महिलाओं के 33 प्रतिशत आरक्षण पर आज तक बहस जारी है। क्यों? चुनावी घोषणापत्रों में महिला-विकास के वायदों से हमें होशियार रहना होगा। अपने अधिकारों का निडर होकर उपयोग करना होगा। हमें सबको समझाना होगा कि हमें 33 प्रतिशत आरक्षण का कानूनी वायदा नहीं सच्चा सहयोग और खुला दृष्टिकोण चाहिए। हमारे बढ़े हुए कदम अब रुक नहीं सकते। अपनी हिम्मत, अपनी ताकत और अपने संगठन की शक्ति पहचानकर हमें नए रास्तों की खेज करनी है। इस खोज में हम एक दूसरे के साथ हैं—

सत्ता के मद में भूल न जाना
हम एक नहीं हजार हैं
देश की आधी आबादी हैं
हम भी दावेदार हैं।

सुनीता ठाकुर

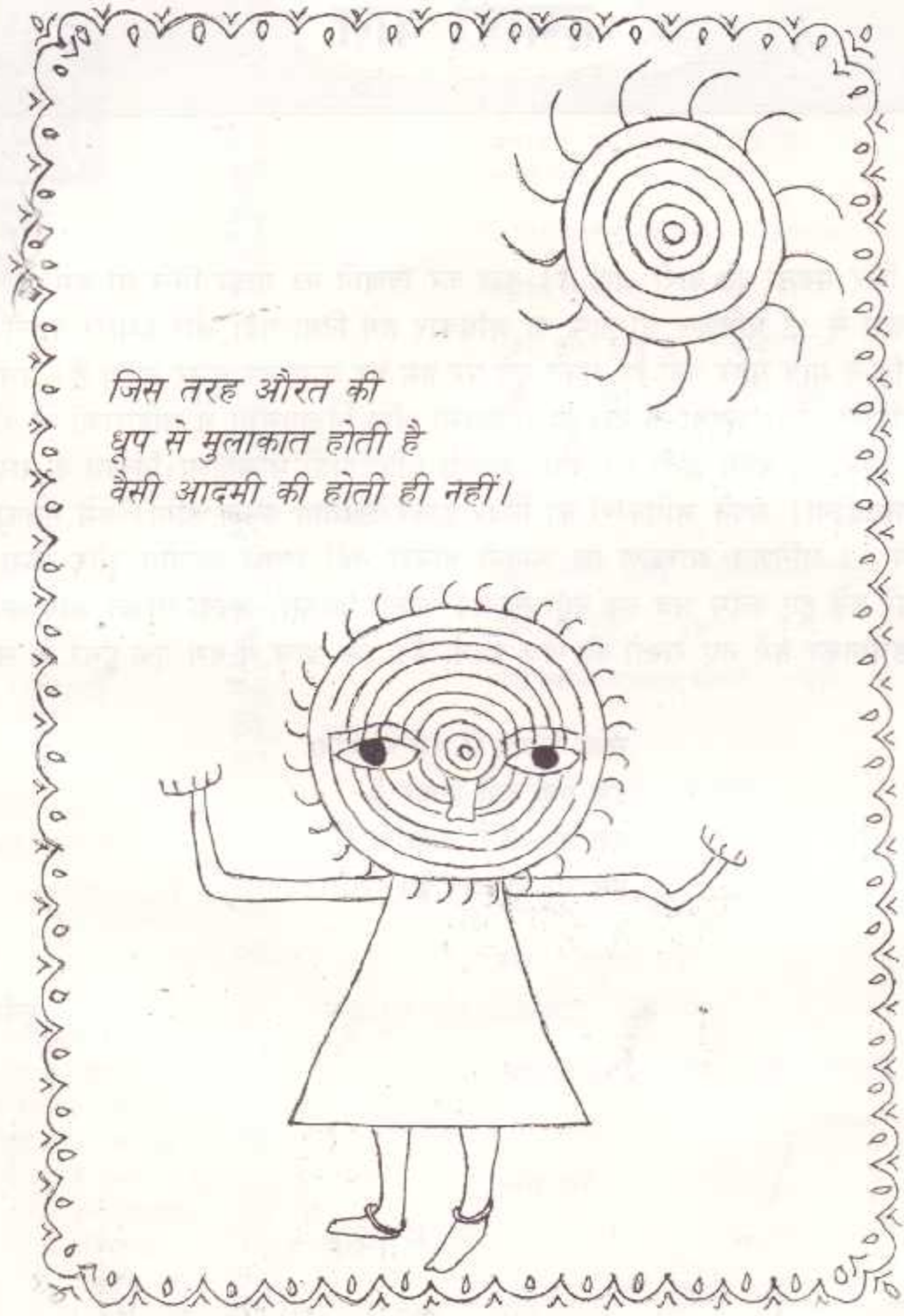
जिस तरह औरत की
धूप से मुलाकात होती है
वैसी आदमी की होती ही नहीं।

मीराबाई-एक ऐसी नदी जो बांधी न जा सकी

कमला भसीन

नारीवाद और नारीवादी बहुत बदनाम हैं। इसमें हैरान होने की भी कोई बात नहीं है, क्योंकि औरतों की आज़ादी की बात बहुत कम लोगों के गले उतरती है। औरत की आज़ादी की बात होती है तो लोगों को समाज, संस्कृति, धर्म, परिवार सबकी नींव हिलती सी लगती है। परिवार के मुखियाओं को अपना राज सिंहासन हाथ से जाता नज़र आता है।

कई बार जिस औरत को नारीवादी कहकर तोहमत लगाई जाती है, उस बेचारी ने नारीवाद का नाम भी नहीं सुना होता। एक औरत का कहना है कि जब भी वह पायदान बनने से इन्कार करती है उसे नारीवादी कहा जाता है। मेरा मानना है कि हम औरतों के अधिकारों की बात करने वालों को कोई भी नाम दे दें, वो बदनाम होंगे, क्योंकि लोगों को परेशानी है औरतों की आज़ादी से। औरतों की स्वायत्तता, उनका स्वराज रास नहीं आता। औरत जगमानी, पति, पिता, बेटा मानी की जगह मनमानी करे ये कम लोगों को अच्छा लगता है।

अक्सर नारीवादियों पर सबसे बड़ी तोहमत लगाई जाती है कि नारीवाद एक विदेशी विचारधारा है, यह पश्चिमी देशों से लाई गई सोच है। नारीवाद में लोगों को 'फॉरन हैन्ड' (विदेशी षड़यंत्र) दिखाई देता है और लोग 'स्वदेशी' की दुहाई देकर नारीवादी सोच को बुरा भला कहते हैं। मज़े की बात यह है कि नारीवाद को 'पाश्चात्य की देन' कहकर उसे बेकार बताने वाले अक्सर वे लोग होते हैं जो स्वयं पतलून-शर्ट पहने होते हैं, अंग्रेज़ी भाषा में बोलते हैं। वे कई विदेशी दर्शकों के भक्त होते हैं।

क्या मीरा नारीवादी नहीं थीं?

मेरा अपना मानना यह है कि नारीवादी सोच कहीं बाहर से नहीं आई। मेरी नज़र में हर सदी में भारत में नारीवादी सोच की औरतें हुई हैं- और उन्होंने किसी अमरीकी नारीवादी का न नाम सुना था, न किताब पढ़ी थी। अब मीराबाई को ही लें। मेरा मानना है कि आज से 480 बरस पहले राजस्थान जैसे मर्दाने, पितृसत्तात्मक इलाके में पैदा हुई मीराबाई अवश्य एक नारीवादी थी। मीरा ने नारीवाद का नाम भी नहीं सुना

था। न कोई पर्चा पढ़ा था, न किसी मोर्चे में भाग लिया था, न किसी महिला समूह की सदस्य थी मीरा। वह तो एक नदी थी जो सामाजिक बांधों में बंधकर न रह सकी। औरतों पर लगाये गये बंधनों में जीने को तैयार न हुई मीरा और बह निकली। अपने मन की करने को मीरा ने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया। उस 13-14 बरस की मीरा का मन ही आजाद था, उसके अंदर से फूट रहे थे झरने आज़ादी के। पितृसत्ता के ख़िलाफ़, औरतों पर लगाये बंधनों के ख़िलाफ़, अंदर से निकलने वाला लावा ही नारीवाद है। यह कोई ऊपर से थोपा पहनावा नहीं है।

मीरा ने नारीवाद का नाम भी नहीं सुना था। न कोई पर्चा पढ़ा था, न किसी मोर्चे में भाग लिया था, न किसी महिला समूह की सदस्य थी मीरा। वह तो एक नदी थी जो सामाजिक बांधों में बंधकर न रह सकी। औरतों पर लगाये गये बंधनों में जीने को तैयार न हुई मीरा और वह निकली।

जैसा राजस्थान में होता था और आज भी होता है—मीरा की छोटी सी उम्र में शादी तय कर दी गई। अच्छे घर की लड़कियों को भी पढ़ाने लिखाने, कोई हुनर सिखाने की बात थी कहां तब। राणा परिवार के राजकुमार से मीरा की शादी तय कर दी गई, लेकिन मीरा ने तो कृष्ण को अपना पति पहले से ही मान लिया था। वह कोई और शादी नहीं करना चाहती थी। कहते हैं- मीरा ने बहुत मना किया शादी करने से, पर कहां मानने वाला था परिवार एक बच्ची की ऐसी अनसुनी मांग। शादी हुई और 13-14 साल की मीरा अपनी हम उम्र दासी और सहेली ललिता और अपने जीवन साथी कृष्ण की मूर्ति लेकर ससुराल पहुंची। कैसी छटपटाती होंगी ये नन्हीं सी जानें जिनकी ज़बरदस्ती शादी कर दी जाती हैं, जिन्हें बिल्कुल अनजाने घरों में हमेशा के लिये भेज दिया जाता है, अंदाज़ा लगाना मुश्किल है।

ख़ैर-हर असहाय, अस्वायत्त लड़की की तरह मीरा ससुराल पहुंची। वहां सासूजी ने देवी की पूजा करने को कहा तो आज़ाद मन की मीरा ने कहा वह तो कृष्ण की भक्त है, किसी और की पूजा कैसे कर सकती है। पूरा ससुराल परेशान हो गया होगा उस दिन। राणाओं के घर में अपनी मर्ज़ी का मालिक एक और कहां से आ गया और वह भी घर की बहू। घरवालों के दबाव की वजह से मीरा का शरीर ससुराल ज़रूर पहुंच गया था, पर उसका मन अपने पति को नहीं स्वीकार सका और लड़कियों की तरह मीरा अपने मन के ख़िलाफ़ कुछ करने को तैयार न थी।

एक परम्परा के खिलाफ़ मीरा का विरोध

कुछ बरसों के बाद मीरा के पति की मौत हो गई- यानि छोटी सी उम्र की मीरा विधवा हो गई। वहां की रीति के हिसाब से मीरा को अपने पति की मौत के बाद न जीने की ज़रूरत थी न जीने का अधिकार। उसे सती होने को मजबूर किया गया। अंदाजा लगायें क्या हालत रही होगी मीरा की। 20-22 साल की मीरा एक तरफ़ और सारा समाज एक तरफ़। मीरा ने कहा कैसी सती? क्यों सती? मेरा पति कृष्ण है और उसका देहान्त नहीं हुआ है तो मैं भला कैसे विधवा हुई? यह सोचकर भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि अगर मीरा अड़ी न होती तो वह ज़िन्दा जला दी जाती। वह हज़ारों गीत जो मीरा ने बनाये-न

बनते, न गाये जाते, वह रास्ते जो मीरा ने बनाये, जिन से पांच सौ बरस बाद भी हम जैसे लोग उत्साहित होते हैं, न बनते। राजस्थान की हज़ारों, लाखों बेटियों, बहुओं जिनको ज़िन्दा जला दिया जाता है, या जिनको पैदा होते ही मार दिया जाता है– उनमें से एक होती मीरा। न जाने कितनी मीराओं की बलि चढ़ाई गई है पितृसत्ता पर। न जाने कितनी और मीरा जैसी ही होनहार बच्चियों को सोचने, लिखने, गाने से वंचित रखा है पितृसत्ता ने।

पितृसत्ता के ख़िलाफ़ मीरा की लड़ाई

अपने तरीक़े से मीरा ने विवाह जैसी संस्था का विरोध किया, बहुओं पर ससुराल की हर बात थोपे जाने का विरोध किया और भाग्यवश सफल हुई। मीरा की आस्था, उसका विश्वास इतना अटल रहा कि वह अपने रास्ते से नहीं हटी।

अगर ग़ौर करें और देखें कि मीरा ऐसा क्या चाहती थी जो ग़लत था। वह सिर्फ़ अपनी मर्ज़ी से जीना चाहती थी-उसके अंदर जो लगन थी उसे पूरा करना चाहती थी। वह लगन थी परमात्मा के प्यार की, वह लगन थी आध्यात्म की। साधू संगत की लगन थी, परमात्मा के प्रेम में नाचने की लगन थी, कृष्ण की याद में गीत लिखने की लगन थी। मीरा यह मानने को तैयार नहीं थी कि चूंकि वह लड़की है—उसे यह सब करने का अधिकार नहीं है। यह लड़के-लड़की का भेद, स्त्री-पुरूष की ग़ैरबराबरी मीरा को क़बूल नहीं थी। 15-16 साल की उम्र से ही मीरा ने इस अन्याय को चुनौती दी।

मीरा की लगन में इतनी चमक रही होगी कि उसके परिवार वाले उसे रोक न सके। मीरा ने साधुओं, ज्ञानियों के साथ उठना-बैठना शुरू किया। सुन्दर कपड़ों और गहनों की जगह मीरा को भक्ति से प्यार था। सुनारों से मिलने की जगह उसे साधुओं, फ़क़ीरों से मिलना अच्छा लगता था। एक विधवा औरत पराये मर्दों से मिले यह भला राणाओं को कैसे अच्छा लगता। मीरा के ससुर, जेठ आदि ने कभी धमकी देकर मीरा को रोकने की कोशिश की, कभी बदनाम करके। लोग कह रहे थे 'पागल है यह औरत, सिरफिरी है, अपने इज्ज़तदार परिवार का नाश कर रही है'। तब घूंघट और चारदीवारी के अंधेरों में सिमटकर रहने वाली औरतें इज्ज़तवाली कहलाती थीं। खुला आसमान और रोशनी चाहने वाली औरत कुलनाशी मानी जाती थी। मीरा जानती थी यह सब और उसने कहा–

'पग घूंघरू बांध मीरा नाची रे'। लोग कहें
मीरा भई रे बावरी, सास कहे कुलनासी रे'–

उस औरत विरोधी समाज से मीरा को लाज नहीं थी। वह निकल पड़ी।

अंदाज़ा लगायें, पांच सौ साल पहले के राजस्थान का, जहां पर्दे के बिना 'ऊंचे' घरों की औरतें बाहर नहीं निकलती थीं, वहां पर राणाओं के घर की विधवा बहू गलियों में घूमती, मर्दों के साथ उठती बैठती, कृष्ण प्रेम में मगन गाती, नाचती। आज 1997 में भी मीरा जैसी औरत ढूंढना आसान न होगा जिसमें सामाजिक बंधन, रूढ़ि तोड़ने की हिम्मत हो, जिसमें इतनी अन्दरूनी शक्ति हो कि वह हर रुकावट का हंसते हुए मुकाबला करे।

'विष का प्याला राणाजी ने भेजा,
पीवत मीरा हांसी रे'
मीरा ने अपने ससुराल वालों से कहा–
'राणाजी अब न रहूंगी तोरे हठ की साध्
संग मोहे प्यारा लागे लाज गई घूंघट की'

राह के हर पत्थर को सीढ़ी बनाया

पितृसत्ता और सामन्ती राज को ऐसी चोट मारी मीरा ने कि आज तक भी उसकी रोशनी फैली है। अगर मीरा जैसी लगन, उस जैसी फ़कीरी, निडरता हो तो एक अकेली औरत पितृसत्ता के गढ़ में पैदा होकर भी उस पर धावा बोल सकती है। कितनी औरतों के दिलों को गर्माया होगा मीरा की हिम्मत ने। मीरा ने साबित कर दिया कि औरत भी भक्त हो सकती है, भक्ति में मस्त हो गीत बना सकती है, अपनी लगन और आस्था के दम पर ऐसी शोहरत पा सकती है कि अकबर बादशाह जैसे लोग उससे मिलना चाहें।

अपनी सहेली ललिता के साथ मीरा गांव-गांव, शहर-शहर डोली। कृष्ण के गीत गाती वह कृष्ण भक्तों की खोज में वृन्दावन पहुंच गई। बिना बस, रेलगाड़ी, घोड़ागाड़ी के मीरा और ललिता चलती थीं सैकड़ों मील। रास्ते के गांव और कस्बों के लोगों की ज़रूर मदद रही होगी उन्हें। राणा मीरा के दुश्मन ज़रूर हो गये थे पर आम जनता मीरा को चाहती होगी, उसकी हिम्मत की प्रशंसक होगी। वृन्दावन में मीरा कृष्ण के मंदिर गई तो वहां के मुख्य पुजारी ने मीरा से मिलने से इन्कार कर दिया। कहा कि वे औरतों से नहीं मिलते। कृष्ण की सच्ची भक्त मीरा ने कहलवाया कि 'कृष्ण के होते एक और मर्द कहां से आ गया। मैंने तो सुना था कि कृष्ण के सब भक्त गोपियों या स्त्री समान होते हैं।' इस पर मीरा ने एक पद भी रचा।

'हूं तो जाणती हती के व्रजमां पुरूष छे एक
व्रजमां वसी के तमे पुरूष छो,
भलो तमारो विवेक'

कहते हैं यह सुनकर वे मदनि पंडित जी शर्माये और मीरा को मिलने चले आये। इस प्रकार मीरा ने स्त्री-विरोधी धर्म के ठेकेदारों को भी आड़े हाथों लिया। अपने निराले ढंग से मीरा ने जगह-जगह पितृसत्तात्मक सोच को ललकारा, उसका विरोध किया।

क्या कबीर, रहीम, गौतम के रास्तों पर इतने सामाजिक कांटे थे?

हर क़दम पर मीरा को पितृसत्ता का मुकाबला करना पड़ा। कबीर, रहीम या गौतम के सामने ऐसी रूकावटें नहीं थीं। उन्हें किसी ने ज़हर के प्याले नहीं भेजे, न किसी ने कुलनाशी कहा। उन्हें हर क़दम पर इतने इम्तहान (परीक्षायें) नहीं देने

(क्रमशः पृष्ठ 24 पर)

मीराबाई (पृष्ठ 6 का शेष भाग)

पड़े जितने औरत होने की वजह से मीरा ने दिए। गौतम जब सत्य या बोध की खोज में अपनी पत्नी, बेटे, मां-बाप, राज-पाट छोड़कर, बिना बताये निकल गये तो सबने शोक ज़रूर मनाया पर उसके पीछे फ़ौजें नहीं भेजीं, उसे मारने के षड़यंत्र नहीं रचे गये। इन सब पुरूषों को, जो ज्ञानी, ध्यानी, फ़कीर, कवि लेखक बन जाते हैं उन्हें मर्द होने के जो अनगितनत फ़ायदे मिलते हैं वो मीरा को नहीं मिले। इसीलिये कहते हैं कि औरतों को मर्दों की बराबरी करने के लिये उनसे दुगनी सहूलियतें चाहिए।

हालांकि मीरा की मृत्यु के बारे में कुछ पक्का नहीं है, पर एक मान्यता यह है कि आख़िरी दम तक मीरा के ससुराल वालों ने उसे चैन से जीने नहीं दिया। मीरा और ललिता समुद्र के किनारे बसे तीर्थ द्वारका में थीं। राणा ने पांच-सात ब्राह्मण भेजे मीरा को वापिस लिवा लाने को। मीरा के इन्कार करने पर ब्राह्मणों ने कहा कि अगर मीरा उनके साथ वापिस नहीं जायेगी तो वे अनशन कर देंगे और अपनी जान दे देंगे। इतना मानसिक दबाव मीरा सह न सकी। कहते हैं उन्हीं दिनों में मीरा और उसकी जीवन-मरण की साथी ललिता समुद्र में समा गई और हमेशा के लिये ससुराल वालों की पकड़ से दूर चली गईं। कहने को लोग कहते हैं कि मीरा को समुद्र में कृष्ण दिखाई दिये और वह उनकी तरफ़ चल दी और समुद्र में समा गई, पर यह भी मुमकिन है कि मीरा ससुराल के दबाव का और मुकाबला न कर सकीं, वह थक गई थीं विपत्तियों का सामना करते करते। उसे हर वक्त सामाजिक लहरों के विपरीत चलना पड़ा था। शायद अंत में मीरा जैसी औरत को भी पितृसत्तात्मक रीति-रिवाजों के बोझ ने मार डाला। मरकर मीरा अमर हो गई और हमें यह संदेश दे गई कि मुश्किल से मुश्किल हालातों में भी नये रास्ते बनाये जा सकते हैं, गहरे से गहरे अंधेरे में भी दीप जलाये जा सकते हैं। □

...और शहनाई गूंज उठी

मणिमाला

बरखेड़ी नाम की इस बस्ती में पिछले अट्ठारह साल से शहनाई नहीं बजी थी। इस बस्ती की सारी व्यवस्था कुंआरी बेटियों ने सम्भाल रखी थी। 180 परिवारों की इस बस्ती में हर घर की बड़ी बेटी ने अपनी मांओं और भाई-बहनों की पूरी ज़िम्मेदारी ले रखी थी। कारण? बाप पियक्कड़ था। बस्ती में ही बना दी गई थी शराब की दुकान। वहां सब के सब पियक्कड़ थे।

इतने पियक्कड़ कि न उनको अपनी नौकरी की परवाह थी, न बीवी की, न बाल-बच्चों की। सुबह उठते ही बोतल खरीद लाते। जी भर कर चढ़ा लेते। फिर कहीं किसी नाली में ढिमला जाते। कचरे पर पड़े रहते। नशा टूटता तो फिर दूसरी बोतल चढ़ा लेते, फिर पड़ जाते। उठते तो तीसरी थाम लेते। बस, शराब और नशा। उनकी ज़िन्दगी में इसके अलावा और कुछ भी नहीं था।

यह बस्ती देश के एक बड़े राज्य मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में बसी हुई है। वहां एक बरखेड़ी नहीं हैं– सैंकड़ों हैं। सरकार ने करीबन हर बस्ती में शराब की दुकानें खोल रखी हैं। कहीं ये दुकानें स्कूलों के आस-पास खुली हैं तो कहीं मन्दिर-मस्जिदों के पास।

बरखेड़ी : साहसी बेटियों की बस्ती

अकेले बरखेड़ी गांव में पिछले पांच सालों में शराब पीकर पचास से ज़्यादा लोग मरे। यह बस्ती विधवाओं की बस्ती बन गयी। फिर पियक्कड़

बाप और अनब्याही बेटियों के नाम से बदनाम हुई यह बस्ती– या तो पियक्कड़ बाप की वजह से या शराब की वजह से। बाप के मरते ही बेटियों के कंधों पर मांओं और भाई-बहनों के भरण-पोषण की समूची पूरी ज़िम्मेदारी आ गई। उन्होंने बखूबी सम्भाला भी।

एक कंधे पर पियक्कड़ बाप का बोझ सम्भाला और दूसरे कंधे पर विधवा मांओं और भाई-बहनों की जरूरतों का बोझ। क्या-क्या नहीं किया पियक्कड़ों की इन बस्तियों की बेटियों ने। किसी ने मजदूरी की। किसी ने पुलिस में नौकरी की। किसी ने ट्यूशन पढ़ाये। किसी ने घर-घर जाकर सामान बेचे।

मुसीबत यह कि नशे में धुत बाप इन्हें यह सब भी न करने देते। घर से निकलने नहीं देते थे। लड़कियां बेचारी मांओं के सहयोग से चोरी-छिपे

जाती थीं कमाने, काम-धाम करने। अल्पना ने तो बताया कि वह रात में अपने पिता के सो जाने के बाद घर से निकलती थी और सारी रात पुलिस चौकी में पहरेदार की नौकरी करके पिता के जागने के पहले लौट आती थी। एक दिन पिता के जागने के बाद लौटी। बाप ने पूरा घर सिर पर उठा लिया। बेटी को मार-मार कर अधमरा कर दिया। मां बचाने की लाख कोशिशें करती रही, पर बाप की ताक़त के सामने उसकी एक न चली।

उसी दिन अल्पना अपनी तनख्वाह लेकर आई थी। उसने वह भी छीन ली। उसी दिन उसी वक्त शराब की दुकान पर चला गया। छक कर पी उस दिन उसने अपनी बेटी की कमाई से। जब नशे में धुत हो गया तो नाले के किनारे पड़ गया। बचे हुए रूपये जेब में पड़े हुए थे। उसे उसका दोस्त निकाल ले गया। वह भी पी गया।

अल्पना ने उठाया साहसी कदम

अल्पना ने अपनी ही बस्ती में शराब के खिलाफ़ मुहिम की। पहले एक...फिर दो...फिर तीन...चार...पांच...एक-एक करके तमाम बेटियां इस मुहिम में शामिल हो गईं। अब मांओं की बारी आई। वे भी शामिल हुईं। आन्दोलन ने जोर पकड़ा। जिनके पिता पी-पी कर मर चुके थे वे तो मर चुके थे, लेकिन जो जिन्दा थे उन्होंने अपनी ही बीवियों के खिलाफ़ आवाज उठाई। पुलिस बुलवाई। मुखबिरी की, लेकिन बेटियों की आवाज दबी नहीं।

जब आवाज़ आन्दोलन का रूप लेती चली गयी तो कई सारे नागरिक संगठन और महिला संगठन भी इस आन्दोलन में शरीक हुए। आख़िरकार वह दिन भी आया जब बरखेड़ी बस्ती में शराब की दुकान बन्द हुई। गांव वालों को सुकून मिला। इस बस्ती में बेटों की शादी तो की जाती थी, लेकिन बेटियों की शादी नहीं होती थी। पियक्कड़ बापों का सारा खामियाजा बेटियों को भुगतना पड़ता था। कोई भी रिश्ता बनाने आता तो नाले में पड़े हुए बापों को देखकर लौट जाता। बहुएं बेटे को लेकर पीहर चली जातीं या कहीं और नौकरी करने की जिद पकड़कर यहां से हट जाती थीं। बच गयी थीं सिर्फ़ यही बेटियां।

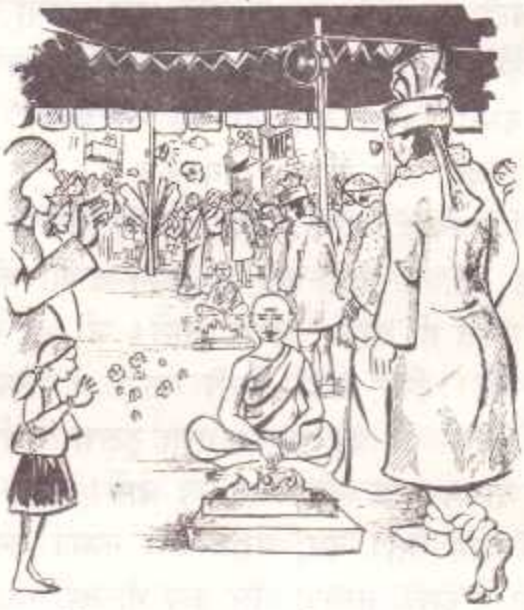

हिम्मत और सफलता का दौर

अठ्ठारह साल के बाद जब पिछले साल इस बस्ती से शराब की दुकान हटी तो इन्होंने उसी जगह पर एक चबूतरा बनवाया, खुद ईंटे इकट्ठा कीं। खुद गारा तैयार किया, हवन करवाया। जब इन्होंने हवन करवाने की शुरूआत की तो फिर एक बार आवाज उठी-विधवाएं और कुंवारियां कैसे हवन कर सकती हैं? इनके हवन से जगह शुद्ध नहीं हुई, पर उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ा। उन्होंने हवन पूरा किया और वहीं पर दुर्गा की मूर्ति की स्थापना की।

अल्पना ने बताया कि दुर्गा शक्ति का प्रतीक है। इसीलिए उन्होंने उस जगह पर दुर्गा की प्रतिमा की स्थापना की। यह उन्हें शक्ति देती रहेगी। दशहरे के दिन लड़कियों ने दुर्गा-प्रतिमा को विसर्जित भी किया। उसके बाद उसी जगह पर बारह लड़कियों की शादी हुई। अठ्ठारह साल बाद जब इस बस्ती में बारात आई और शहनाई बजी तो विधवा मांओं ने ही दूल्हे और बारात की अगवानी की। उन्होंने ही शादी के सभी रस्म-ओ-रिवाज किये। सबकी खुशी का ठिकाना नहीं था। इस बस्ती में अठ्ठारह साल बाद पहली बार यहां शहनाई बजी थी। सबने राहत की सांस ली और दूसरी गरीब बस्तियों की लड़कियों ने इन्हीं की राह चलने का संकल्प किया।

अब भोपाल की कई शराबी बस्तियों में लड़कियां इसके खिलाफ उठ रही हैं। उन्हें यकीन है कि अगर बरखेड़ी की लड़कियां लड़ सकती हैं, जीत सकती हैं, अपनी किस्मत आप लिख सकती हैं तो वे क्यों नहीं। अगर कोई आत्मविश्वास के साथ उठ खड़ा हो तो फिर उसे कौन रोक सकता है? कोई नहीं। कतई नहीं। कभी नहीं। □

अपना-अपना काम

मेरे आंगन में आम का एक पेड़ है। एक दिन बड़े सवेरे एक नीली चिड़िया आई। उसने आम के पेड़ पर अपना घोंसला बनाया। दिन गुजरते गए, आंगन हरा हो गया। प्रातः की पहली किरण के साथ चिड़िया के जाने के बाद एक कौआ आया।

घोंसला उसने चोंच से कुरेदा फिर अंडे को चट कर गया। घोंसला धरती पर बिखेर कर कौआ मुंडेर पर बैठ गया। पता नहीं क्यों चिड़िया आज दोपहर वापस लौट आई। उसने देखा घोंसला तहस-नहस होकर धरती पर बिखरा पड़ा है। आते ही समझ गई कि माजरा क्या है। कुछ क्षण उसने सोचा फिर अपनी चोंच में तिनका दबाया। आम के पेड़ पर फिर नीड़ बनाने लगी। मैंने चिड़िया से कहा आम पर नहीं-अमरूद के पेड़ पर बना लो अपना नीड़। कौआ देख रहा है फिर गिरा देगा। चिड़िया ने बड़े आत्मविश्वास से कहा—'कौए ने अपना काम कर दिखाया मुझे अपना काम करने दो। विनाश के डर से निर्माण नहीं रुका करता। उत्तर सुनकर कौआ कांव-कांव कर उड़ गया। मुझमें नए जीवन की आशा जाग उठी।

साभार-बाल वाटिका जुलाई, 97

स्वराज का सपना

सुनीता ठाकुर

स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। बाल गंगाधर तिलक का यह नारा हमारी आज़ादी का मूलमंत्र बना और आज आज़ादी के पचास वर्षों में भी यही नारा बराबर गूंजता रहता है। स्वराज-स्वशासन यानी अपनी सरकार, अपना शासन। शासक भी हम, शासित भी हम। लोकतंत्र का यही नारा गांवों के स्तर पर पंचायतीराज का सपना साकार करता है।

भारत जैसे देश में जहां 80 प्रतिशत जनता गांवों में बसी हो। पंचायती राज एक ऐसा सपना है जिसे पूरा करना निहायत जरूरी हो जाता है। गांवों की पूंजी की देखभाल (जल, जंगल, जमीन) और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पंचायती राज की जरूरत महसूस हुई ताकि अपनी छोटी-छोटी समस्याओं के लिए गांवों को शासन का मोहताज न रहना पड़े। वे आत्मनिर्भर हों।

पंचायतों में महिला आरक्षण

आज समाज में औरत की भागीदारी को स्वीकारा जा रहा है। उसके विकास के लिए तमाम योजनाएं, संस्थाएं जी-तोड़ मेहनत कर रही हैं। हर व्यवसाय में उसे आगे बढ़ाने की कोशिशें जारी हैं। गांव में भी पंचायत स्तर पर औरतों के 33 प्रतिशत आरक्षण को स्वीकार किया गया है। इसी तरह अनुसूचित जाति और जनजाति के आरक्षण में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। साथ ही तीनों स्तर पर एक तिहाई अध्यक्ष पद औरतों के लिए आरक्षित होंगे। पंचायत समिति में एक तिहाई ऐसी ग्राम पंचायतें होंगी जिनमें केवल औरतें ही सरपंच होंगी। ज़िले में एक तिहाई ऐसी पंचायत समितियां होंगी जिनमें केवल औरतें ही पंचायत समिति की अध्यक्ष बनेंगी। राज्य में एक तिहाई ऐसे जिले होंगे जिनमें केवल औरतें ही जिला परिषद की अध्यक्ष बनेंगी।

नया पंचायतीराज अधिनियम

नया पंचायती राज अधिनियम (तिहत्तरवां संशोधन) औरत को गांव और जिला स्तर पर प्रशासनिक

कार्यों में आगे बढ़ने का भरपूर मौका और हक देता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि चाहे पढ़ी लिखी हो या कम पढ़ी-लिखी, महिला की शिक्षा नहीं, उसके सामाजिक कार्यों को महत्व देते हुए उसके विकास के द्वार खोले गए हैं। अब गांव की महिलाएं भी खुलकर अपने अधिकार की मांग का सपना सच होते देख सकती हैं। साथ ही महिला कार्यकत्ताओं के आगे बढ़ने और सत्ता में आ जाने से औरतों में आत्मविश्वास, सम्मान की भावना बढ़ी है। वे समाज में कहीं अधिक सुरक्षित भी महसूस कर रही हैं। सबसे बड़ी बात उनके आत्म विश्वास को जगाने की है। यही इस आरक्षण की महत्ता भी है, क्योंकि बिना कानूनी ताक्त के औरतों के विकास का सपना देखना फिजूल ही लगता है।

पंचायती राज में औरतों की भागीदारी अब तक एक दिखावा था। अब उनके राजनीति में आगे बढ़ने का रास्ता खुला है। वह सीधा चुनाव लड़कर बड़ी संख्या में पंचायत में हिस्सेदारी ले पाएंगी।

एक मोटे अनुमान अनुसार

आने वाले पंचायत चुनावों में लगभग आठ लाख औरतें राजनीति में आएंगी। चुनावों द्वारा प्रतिनिधि बनकर वे जनता की सीधी भागीदारी से पंचायत का सदस्य बनेंगी। पहले औरतें सरपंच आदि के द्वारा नाम सुझाए जाने पर पंचायत में सदस्य बनती थीं। उनकी भागीदारी भी नाम की होती थी। साथ ही सरपंच के प्रति ही वे जवाबदेही होती थीं। उनकी कृपादृष्टि की पात्र होती थीं, लेकिन अब राजनीति में वे जनता के मत और अपने बूते पर काम करने के लिए स्वतंत्र होंगी।

पंचायत में आरक्षण से एक तिहाई स्थान पर तो औरतें चुनकर आएंगी ही, पर यह समझना भी जरूरी है कि वे बाकी सीटों पर भी चुनाव लड़ सकती हैं।

कानून द्वारा बड़े पैमाने पर सुधार करके औरतों के विकास के नए द्वार खोले गए हैं, लेकिन इसका कितना बड़ा असर होगा वह प्रश्न है। जरूरत महिलाओं में इस संशोधन की जानकारी, जागरूकता और आगे बढ़ने की प्रेरणा देने की है। सिर्फ़ नीतियां और कानून बनाकर ही सरकार दामन नहीं झाड़ सकती। उसे देखना होगा कि उतने ही आदर्श रूप में वह लागू भी हो। खुद हमें अपने अधिकारों के लिए सचेत रहना होगा। हमें अपने फैसले खुद करने होंगे। जब तक हम खुद कदम नहीं बढ़ाएंगी दुनिया रास्ता नहीं छोड़ेगी।

बदलाव आएगा

राजनीति का क्षेत्र औरतों के लिए (खासकर गांव की) नया है। वह अभी तक इस दुनिया के तौर तरीकों से दो चार नहीं हुई हैं।

दूसरे औरत होने के नाते उन्हें औरतों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार का अहसास है। इसलिए उम्मीद है कि वे न्याय का पक्ष लेंगी। औरतों की समस्याएं सुलझाएंगी। उनके विकास के लिए काम करेंगी।

आरक्षण से कम से कम एक तिहाई संख्या औरतों की होगी पंचायतों में । उन्हें एक दूसरे से ताक़त मिलेगी। एकजुट होकर वे ज्यादा ताक़तवर फैसले कर पाएंगी और पंचायतों में भी उनकी आवाज सुनी जाएगी।

साथ ही औरतों के फायदे और तरक्की के लिए स्वयं सेवी संस्थाओं और महिला संगठनों की योजनाओं को (सरकारी दबाव के साथ) लागू कर पाना अधिक सरल हो सकेगा।

हमें अपनी पितृसत्तात्मक सोच से मुक्त होना होगा। पत्नी, बहू, मां की आदर्शवादी सोच को तोड़ना होगा। तभी हम आजादी से कुछ कर पाएंगी। हमें जो अधिकार दिए गए हैं वे पूरी स्त्री जाति के विकास के लिए दिए गए हैं।

तस्वीर का दूसरा पहलू

तस्वीर का दूसरा रूप भी है। आरक्षण के बावजूद औरतों की हालत पार्टी में वैसी ही है जैसे समाज में। पार्टी के फ़ैसलों में उनकी भागीदारी न के बराबर है। पार्टी के आन्दोलनों और बैठकों में बढ़चढ़कर हिस्सा लेने के बावजूद नेतृत्व में उनका कोई स्थान नहीं रहने दिया जाता। पूरी कोशिश उन्हें हाशिए पर रखने की होती है।

तीस प्रतिशत आरक्षण की घोषणा के बावजूद उन्हें पार्टी की कमान या नेतृत्व नहीं सौंपा जाता। चुनावों में भी बेहद कमज़ोर सीटों पर ही उन्हें खड़ा किया जाता है।

राजनैतिक पार्टियां औरतों के मुद्दे उनके कल्याण की घोषणा, नीतियां वोट-बैंक बढ़ाने के लिए बनाती हैं। वरना तो जाति और धर्म की दुहाई देकर सती और शाहबानो जैसे गंभीर मामलों को भी नकार दिया जाता है।

इन सब हालातों को सुधारने के लिए हमें खुद आगे बढ़ना होगा। प्रायः आज भी वे अपने फैसलों के लिए मर्दों की मर्जी की मोहताज हैं। हमें अपनी पितृसत्तात्मक सोच से मुक्त होना होगा। पत्नी, बहू, मां की आदर्शवादी सोच को तोड़ना होगा। तभी हम आजादी से कुछ कर पाएंगी। हमें जो अधिकार दिए गए हैं वे पूरी स्त्री जाति के विकास के लिए दिए गए हैं। जरूरत इस बात की है कि हम अधिकारों का उपयोग करना सीखें। घूंघट और रिवाजों की दीवार तोड़कर इनका सही इस्तेमाल करें। □

अपना गांव अपना राज–पुस्तिका पर आधारित लेख

मंज़िलें उन्हीं की होती हैं जो राहों के जोखिम उठाते हैं,
कांटों की सेज पर ही फूल ज़िन्दगी के मुस्कुराते हैं।

टिहरी-सफ़र गांव का

सीमा-आभा

'पहाड़' शब्द सुनते ही ज़हन में एक सुन्दर-सी छवि उभर आती है। शीत की ठिठुरन, पेड़ व झुरमुटों से लदे पहाड़। छोटी-छोटी पगडण्डियां और कलकल करती कोई नटखट सी नदी, परन्तु इस सुन्दरता का एक रूप हम अनायास ही भुला बैठते हैं– वह है पहाड़ों का संघर्षमय जीवन। ख़ासकर वे औरतें जिनके पैरों पर ही यहां की जिन्दगी गतिमय है।

पहाड़ की औरतों के पहाड़ जैसे कामों, उनकी दिनचर्या के बीच अपने अस्तित्व को खोजती औरत– इन सबको बहुत करीब से देखने का मौका हमें 19 जून 1997 को मिला।

महिला समाख्या परियोजना: एक परिचय

महिला समाख्या परियोजना, उत्तर प्रदेश के दस जिलों में कार्यशील है। इनमें से एक है टिहरी गढ़वाल। यह परियोजना यहां की महिलाओं की समस्याओं को लेकर काम करती है। इनके काम का सीधा सम्बन्ध पहाड़ और उससे जुड़ी मिट्टी से है। विभिन्न क्षेत्रों में काम का क्या रूप है? क्या प्रक्रिया है-इसे करीब से देखने-समझने के लिए ही हम दो लोग 'जागोरी' से टिहरी के गांवों में गए।

हमें चार गांवों में जाने का मौका मिला। सभी महिलाओं ने कुछ अपनी कही और कुछ हमारी सुनी। ये गांव सिलगांव, होल्टा-महड़ और खाण्ड गांव थे। इन गांवों में मुख्यतः बाल-विवाह का प्रचलन है। इसका विरोध महिला समाख्या में कार्यरत सहयोगिनियां भी कर रही हैं। इन गांवों में महिला-समाख्या के कार्यक्रम से काफ़ी मज़बूती मिली है। ग्रामीण महिलाएं जिसे पहले आपसी मामला कहकर टाल देती थीं, अब एकजुट होकर किसी भी महिला के खिलाफ़ हो रहे अत्याचार का मुकाबला करती हैं।

शुरुआत हुई गांवों में 'महिला केन्द्रों' से जहां ग्रामीण बहनों की शिक्षा का इन्तज़ाम किया गया है। गांव की ही कोई महिला (जिसे सहेली के नाम से जाना जाता है) अपने घर पर ही रात को औरतों को बुलाती है और उन्हें अक्षर ज्ञान करवाती है। कई औरतों ने अपना नाम भी लिखना सीख लिया है।

बुरांश–एक बाल केन्द्र

इसी तरह 'बुरांश' एक बाल केन्द्र है। यहां स्कूल न जा पाने वाले बच्चे आकर अनेक तरह की क्रियात्मक गतिविधियों द्वारा बहुत कुछ सीखते

हैं। वे गीत-कविताओं के माध्यम से पढ़ना-लिखना भी सीख रहे हैं। एक खास माहौल में सीखने-सिखाने की प्रक्रियायें चलती हैं।

औरतों से अक्सर सुनने में आता है-"हमारा कोई ठिकाना नहीं, न मायका न ससुराल हमारा।" बस इसी अहसास ने गांव में ही नारी-ठिकानों की योजना बनाना शुरू किया। यह औरतों की अपनी जगह थी जिसे वो अपनी जरूरतों के अनुसार बनाती हैं। महड़ एवं खाण्ड गांव के बीच ऐसा एक ठिकाना बना। इस ठिकाने से उन्हें बहुत लगाव है। इसके लिए वो लड़ मरने को तैयार हैं। इसे सभी गांव की औरतें अपना ठौर

कहती हैं। उनमें से एक ने कहा 'पहले तो आदमी ही एकजुट होकर मीटिंग करते थे, हंसी-ठिठोली करते थे। अब तो हमारा भी ठिकाना है। यहां हम औरतें एक साथ बैठकर हंसती-बोलती हैं। यहां की दीवार, जमीन सब कुछ हमारी है।' पहाड़ के संघर्षमय जीवन की आदी महिलाएं इससे बढ़कर भी कुछ करना चाहती हैं। छोटे-छोटे काम धंधे करना चाहती हैं, ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें।

एक टूटती हुई परम्परा

पहाड़ ही नहीं हिन्दुस्तान में सभी जगह एक धारणा है कि खेत में पहला हल मर्द ही लगाते हैं। औरतों के लिए इसे तोड़ना एक चुनौती बनकर सामने आया है। हल मर्द लगाते हैं। उसके बाद के सारे काम औरतों के कन्धों पर ही होते हैं। रोपाई से लेकर कटाई तक सारा भार औरतों पर ही होता है। कहीं यह प्रश्न औरतों को कचोटता है कि हम सब कर सकती हैं, पर हल नहीं लगा सकतीं। टिहरी गढ़वाल की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से औरतों पर निर्भर है। वहां खेत में हल चलाने के लिए मर्दों का मुंह देखना पड़ता है। यह सब कई औरतों के लिए मुश्किल खड़ी कर देता है, क्योंकि उनके पति, भाई, पिता नौकरी की तलाश में शहर चले जाते हैं। इन औरतों को किसी और गांव के मर्द से हल लगवाना पड़ता है। बदले में उसे पैसे देने पड़ते हैं। इस बात को लेकर औरतों में चर्चाओं का दौर शुरू हो गया। अगर वे अपने चारों ओर गहरी निगाहें डालकर बदल रही हैं तो हल पर हाथ धरने की तैयारी भी कर रही हैं। देखें धरती डोलती है क्या?

थोड़ी सी जमीन जो इनके पास है वह भी इन औरतों के बोझिल जीवन की तरह थक गई है। एक औरत ने कहा, "हमारी जमीनें हमारे आदमियों की तरह शराबी हो गई हैं। विदेशी खाद के बग़ैर अब कुछ नहीं उपजता।" अंग्रेजों के ज़माने से यहां के मर्द मिलिट्री में जाते रहे हैं। वहीं से चलती आ रही है ये शराब की लत। गांव-गांव में कच्ची शराब पकती है। सस्ती और ख़तरनाक शराब। मनों लकड़ियों के गट्ठर के बोझ को पीठ

(क्रमशः पृष्ठ 26 पर)

टिहरी–सफ़र गांव का (पृष्ठ 14 का शेष भाग)

पर बांधकर पहाड़ों की पेचीदा चढ़ाई तय करने वाली ये औरतें, शराब के खिलाफ़ जानलेवा लड़ाई में बार-बार हार जाती हैं, पर रुकती नहीं। भट्टियां तोड़ने का काम लगातार चलता रहता है। साथ ही उन्होंने 'रंत-रैबार' के एक अंक में शराब की राजनीति और उससे बढ़ती हिंसा पर विस्तार से जानकारी दी है।

आज उनके संगठन की जड़ें गहरी होती मालूम पड़ती हैं। उन्होंने बड़े गर्व से कहा पहले बाहर से कोई भी आता था तो सरपंच के घर ले जाया जाता था आज उन्हें 'सखी' के घर लाते हैं।' अपनी अलग पहचान की ताकत और जानकारियों की गर्मायिश से वो उस ठण्डे-कठोर इलाके में अपनी लड़ाईयां खुद लड़ रही हैं।

इतने संघर्षों के बावजूद भी जीवन अपने सुर-ताल में जीता है। श्रम और संगीत का अनूठा तालमेल यहां सुनाई पड़ता है। बोझा ढोती महिलाओं के कदमों के स्वर, मधुर गीतों से गूंजता वातावरण शायद इसी रसमय संगीत में डूबकर ये महिलाएं अपने कष्ट को भुला पाती हैं और लगातार पथरीली राहों पर बढ़ती जा रही हैं। □

अपनी - अपनी खुशबू

विजयदान देथा

पानी के सहारे मछलियां जीती हैं और मछलियों के सहारे मछुए। मीठे पानी की झील के किनारे एक मछुए की झोंपड़ी थी। झोंपड़ी के सामने लिपे हुए आंगन में तरह-तरह की मछलियां। चौतरफा हवा में मिचली-मिचली दुर्गन्ध होते हुए भी उस घरवाले उस बदबू के आदी हो चुके थे। मछलियों की मिचलाहट के लिए उनकी नाक की ग्रन्थियां मर चुकी थीं।

टोकरी में ताजी मछलियां लेकर मछुवन पास के नगर में बेचने के लिए जाती थी। एक दफा चौमासे में मछलियों की टोकरी सर पर उठाकर जब मछुवन चलने लगी तब मछुए ने उसे सतर्क करते हुए कहा, 'आज बरखा की रंगत बड़ी बेढब लग रही है। वापस जल्दी आना। मुझे नदी आने का अन्देशा है।'

दूध से जला छाछ को भी फूंक-फूंककर पीता है- कुछ ऐसी ही अतिरिक्त सावचेती मछुए की हिदायत में थी। पिछले साल पहली घरवाली इसी नदी में डूबकर मर गयी थी। घुटनों तक पानी के भरोसे अन्दर उतर गयी सो मंझदार में तीव्र वेग के थपेड़ों से पैरों की जमीन छूट गयी। खूब हाथ-पांव मारे पर कोई बस नहीं चला।

मछुओं को हवा, उमस और बरखा की जबरदस्त पहचान होती है। नदी पार कर नगर में घुसते ही पानी बरसने लगा। मछुवन के मन में बेहद हड़बड़ी मची। भीगते-भीगते सारी मछलियां जैसे-तैसे बेच डालीं। वापस बेतहाशा भागती हुई नदी के किनारे आयी, पर नदी विकट रूप से बह रही थी। देखने मात्र से ही डर लगे, ऐसा उत्कट वेग! पहाड़ की ढलान से पछाड़ खाता पानी नदी के बीच आते ही मचलने लगता था।

पति की बात का ख्याल आते ही मछुवन फौरन वापस मुड़ गयी। अब जाये तो कहां जाये! अनजानी बस्ती! कहां रात गुजारे! संयोग की बात कि थोड़ी दूर जाने पर सामने से एक मालन आती दिखायी दी। पास में राजा का सुन्दर बगीचा था। घर का काम-काज निबटाकर वह बीगचे की निगरानी के लिए जा रही थी। कई मर्तबा दोनों का राह में आमना-सामना होता था, पर फक्त दुआ-सलाम करके आगे बढ़ जातीं। काम की जल्दी धन्धे की हड़बड़ी।

मछुवन के रंग-ढंग देखते ही मालन बिना कहे उसकी परेशानी का कारण समझ गयी। बोली, 'नदी आ गयी तो क्या हुआ! चल मेरे साथ। बहुत जगह है।'

मछुवन उसका एहसान मानते हुए तुरन्त उसके साथ चल पड़ी।

बरखा काफी धीमी हो गयी थी। थोड़ी दूर चलने के उपरान्त मालन ने मछुवन को बुरी तरह भीगे हुए देखा तो कहने लगी, 'ठण्ड लग रही हो तो मेरी बरसाती ले ले।'

मछुवन मुस्कराते हुए बोली, 'हमें भी मछलियों की तरह पानी से ठण्ड नहीं लगती। हम तो बरखा और पानी के आदी हैं।'

घरेलू बातें करती हुई दोनों बगीचे के नज़दीक पहुंची...। अचानक तीन-चार दफ़ा ज़ोर से सांस खींचकर मछुवन ने पूछा, 'यह कैसी गन्ध आ रही है?'

मालन ने सरल भाव से जवाब दिया, 'बगीचे की।'

मालन मोद-भरे सुर में राजा के बगीचे की प्रशंसा करते कहने लगी, 'इसमें अचरज की क्या बात है? ऐसा शानदार बगीचा तो सौ-सौ कोस में भी नहीं मिलेगा। आस-पास के सभी रजवाड़े आये-दिन मेरे बगीचे की कलमें और दावें मंगाते हैं। चमेली की, मोगरे की, केवड़े की, चम्पा की, गुलाब की...!'

मछुवन ने नाक भींचकर बीच ही में पूछा, 'तू रात को यही सोती है?'

भांति-भांति के फूलों की खुशबू के गुमान में खोयी मालन ने तुरन्त जवाब दिया, 'और कहां सोऊंगी? इस बगीचे के अलावा मुझे दूसरी जगह नींद ही नहीं आती। यहां की तो मिट्टी में भी खुशबू घुली हुई है। तेरी इच्छा हो तो तू भी पांच-पचीस पौधे ले जाना। फूल देखने पर मेरी याद तो आयेगी।'

सांस रोकते हुए मछुवन ने बड़ी कठिनाई से मुंह खोला, 'फूलों के बिना क्या याद नहीं आयेगी?'

बरखा बिल्कुल थम गयी थी। बरसाती उतारते हुए मालन उदारता से बोली, 'तुझसे फूल दूर थोड़े ही हैं! इतना दुराव-संकोच भी किस काम का!'

बगीचे के फाटक को खोलते मालन आगे कहने लगी, 'मुझे राजाजी की पूरी छूट है। तुझे फूलों की टोकरी भरकर दूं तब भी मुझे उलाहना नहीं देंगे।

बगीचे के भीतर पैर रखते ही मछुवन का सर फटने लगा। नाक और मुंह पर ओढ़नी का पल्लू रखते हुए धीरे-से बोली, 'पर अपन उलाहने जैसा काम ही क्यूं करें? मैं फूलों का क्या करूंगी?'

मालन आश्चर्य प्रकट करते कहने लगी, 'क्या करेगी? तुझे अभी मेरे फूलों का अन्दाज़ा नहीं है। बड़े-बड़े राव-उमराव इस बगीचे के एक फूल की ख़ातिर तरसते हैं! एक दफा हाथ में लेने से तीन दिन तक खुशबू नहीं छूटती।'

मछुवन का जी बुरी तरह मिचलाने लगा। इस बदबू में मालन कैसे सांस लेती है? मछुवन को तो यहां नींद आनी ही मुश्किल है। उसके नथुने तो मानो झुलस गये हों। ऐसा बदबूदार बगीचा राजाजी के किस काम का? मछुवन के मन में इस

तरह के कई बुलबुले उठे, पर प्रफुल्लित मालन से कुछ भी पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

कोठरी का दरवाजा खोलकर मालन ने मछुवन के भीगे कपड़ों पर हाथ फेरा और बोली, 'तू अन्दर बैठ। मैं अभी पास की कोठरी से तेरे लिए दूसरे कपड़े लेकर आती हूं।'

मछुवन के बार-बार मना करने के बावजूद वह नहीं मानी। कोठरी में घुसने पर थोड़ी-बहुत मिचलाहट कम हुई। गर्व से फूली हुई मालन कपड़ों के साथ फूल भी ले आयी। मछुवन के सामने फूल करते ही उसका जी बुरी तरह मिचलाने लगा। कै होते-होते बची।

अचानक मालन ने दो-तीन मर्तबा ज़ोर-ज़ोर से सांस लेते हुए पूछा, 'यह क्या गन्धा रहा है? इस कोठरी में ऐसी मिचलाहट तो कभी नहीं आयी?'

इधर-उधर टोह लेती हुई मालन की नजर कोने में रखी टोकरी पर अटकी। वो तुरन्त चिल्लाहट का कारण समझ गयी। झुंझलाहट दरसाते बोली, 'यह खाली टोकरी भीतर क्यूं ले आयी? मछलियों की दुर्गन्ध से मेरा तो सर फटा जा रहा है!'

मछुवन क्या जवाब देती? उसकी दुविधा ताड़कर मालन ने खुद अपने हाथों टोकरी उठाकर बाहर रख दी। हाथ को सूंघा तो वैसी ही मिचलाहट! रेत से रगड़-रगड़कर उसने दो-तीन दफ़ा हाथ धोये।

ब्यालू करने के लिए मछुवन बड़ी मुश्किल से मानी। अगर कै हो गयी तो कितना भद्दा लगेगा। ब्यालू से निवृत्त होकर मालन जब पास की कोठरी में सोने गयी तब कहीं मछुवन की जान में जान आयी। नहीं तो सारी रात जगना पड़ता।

उधर मछुवन से दूर होने पर मालन ने खैर मनायी। मछुवन के शरीर से कितनी बुरी मिचलाहट आ रही थी, पर लिहाज़ के कारण कुछ कहा नहीं। उधर मछुवन ने भी मालन का कम लिहाज नहीं रखा था। घड़ी डेढ़ घड़ी तक तो जैसे-तैसे कोठरी में करवटें बदलती रही, पर आखिर धीरे-धीरे पंजों के बल बाहर निकली। अपनी टोकरी लेकर वापस आयी। मुंह पर मछलियों की खाली टोकरी रखते ही उसका जी हल्का हो गया। अब तो वह मरकर भी किसी बगीचे में रतवासे के लिए तैयार नहीं होगी। आज फंसी, वह बहुत है। थोड़ी देर बाद टोकरी की भीनी खुशबू के फलस्वरूप वो खर्राटे भरने लगी। □

हादसों का हजूम

हादसों के हजूम में से दोस्तो, सबसे पहले मैं आपको एक निहायत मासूम हादसे की बात सुनाती हूं। मामूली और मासूम।

पर चिन्हात्मक-गुनाहे अव्वल औरत होना।

दोम-अकेली, सोम-अकेली और अपनी रोटी खुद कमाती है।

गुनाहे अज़ीम-तरीन अपनी रोटी खुद कमाती, ज़हीन, खुद्दार अकेली।

बदचलन

सीमा श्रीवास्तव

सच है–
कि मैं वफ़ादार नहीं,
जो चाट सके तलवों को तुम्हारे
कि मैं व्यावहारिक नहीं,
जो मान लूं सत्य–
असत्य को,
कि मैं *'औरत'* नहीं–
जो मसल दी जाऊं
बिस्तर में तुम्हारे–
चुपचाप,
मैं खरी नहीं उतरती
तुम्हारी दी परिभाषाओं में,
शायद–
मैं बाहर हूं,
जिस्म की परिधि से,
सोच मेरी आज़ाद है,
इसलिए मैं–
बदचलन हूं।

आकांक्षा

सविता वैद्य

आज़ाद पंछी की तरह उड़ना चाहती हूं
फूलों से महका रहे वह चमन चाहती हूं
मेरा भी सपना है उसे सजाना चाहती हूं
मुझे भी दो वह शिक्षा, वह प्यार
जिससे आए जीवन में बहार
निराशा में आशा के दीप जलाना चाहती हूं
तूफ़ानों से किनारों पर आना चाहती हूं
जमाने ने दीवारों को
नारी का अधिकार बताया
घर के बन्धनों को ही
उसका सुन्दर श्रृंगार बताया
अधिकार मांगना औरत का
मर्यादा का उल्लंघन बताया
नारी का छुपा हुआ इतिहास
बदलना चाहती हूं।
हर चेहरे पर हो मुस्कान
वह सवेरा चाहती हूं।

एक द्वार

स्नेहमयी चौधरी

मुझे क्या चाहिये?
खुला नीला आकाश
और चाहिये?
दूर तक फैली धरती

बस और क्या?
दूर पर उन दोनों से
मिलकर बना क्षितिज
और तो कुछ नहीं?
नहीं, नहीं, अभी और चाहिये:

एक द्वार–
जो खुलता चला जाये
खुलता चला जाये
खुलता...
खुलता...।

प्रश्न

सुनीता ठाकुर

आंखों में झांक
सूना आकाश
पूछ बैठा है
ज़िन्दगी का सबब।
आइने मौन हो जाते हैं
उठाकर
वजूद पर प्रश्न।
हवाएं छू जाती हैं
भीतर के
बेबस पंछी को।
नहीं चाहती
पर होता ही है अक्सर
बाहर का सब
हावी हो जाता है
भीतर का कुछ
यूं ही खो जाता है
'मैं' 'मैं' क्यों नहीं
पूछ मन रो जाता है।

लानत है उस गांव पर
बेटी के व्यापार पर

जिस गांव की बेटी बिकती है
उस गांव की इज्ज़त जाती है।

महिला समाख्या : शक्तियात्रा

वीणा शिवपुरी

महिला समाख्या कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों में से खास उद्देश्य है कि शिक्षा और संगठन के द्वारा ग़रीब-देहाती औरतों को सामूहिक सक्रियता के लिए तैयार करना। इसमें तीन मुद्दे उभरते हैं शिक्षा, संगठन और सक्रियता। इन्हीं के लिए महिला संघों का गठन किया जाता है। ये महिला संघ मज़बूत और कार्यशील बनें उसके चार चरण होते हैं।

- सबसे पहले गांव की औरतों के साथ सम्बन्ध और सम्पर्क बढ़ाने का चरण होता है। इस समय सहयोगिनियां अलग-अलग औरतों से या समूहों से मिलती हैं। आपस में अनौपचारिक रूप से बातें होती हैं।
- दूसरे चरण में संघ एक स्वरूप लेने लगता है। नियमित सदस्य बनती हैं। नियमित बैठकें होने लगती हैं। संभव है कि इस समूह का नाम रख लिया जाए।
- इसके बाद मज़बूती का चरण आता है। जब बैठकों के दिन निश्चित होते हैं। चर्चा के मुद्दे निश्चित होते हैं। इन चर्चाओं में कठिन मुद्दे उठाए जाते हैं। गर्मागरम बहस होती है।
- अन्तिम चरण है जिसमें संघ स्वतंत्र रूप से सहयोग इकट्ठा कर सकते हैं। अपने आसपास के वातावरण को प्रभावित कर सकते हैं। किसी मुद्दे पर कार्रवाई कर सकते हैं।

यह बात नहीं है कि मज़बूत व सशक्त संघ हमेशा वैसे ही रहते हैं। इनमें ऊंच-नीच आती रहती है, लेकिन ख़ास बात यह है कि कमज़ोर पड़ने पर वे उसके कारण खोज सकें। कारणों को दूर करके फिर से उठ खड़े हों।

मज़बूत संघों की विशेषताएं :

- इन-संघों की समाज में जगह है।
- उनकी सक्रिय सामाजिक पहचान है।
- जहां सामूहिकता से औरतें ताक़त पाती हैं।
- जहां औरतों ने अपने दर्जे के बारे में एक नज़रिया विकसित किया है।
- उनके साझे लक्ष्य तथा उनके बारे में साझी समझ बन चुकी है।
- सामाजिक तथा क़ानूनी मंचों पर मान्यता मिली है।
- वे पहल करते हैं।
- संघों ने विकल्प तैयार किए हैं।

कमजोर संघों के लक्षण :

- जो पूरी तरह महिला समाख्या के मूल्यों तथा उसके दर्शन को न समझते हों।
- ऐसी सखियां हों जो दबाव डालती हों या जरूरत से ज़्यादा सक्रिय हों और सामूहिकता को उभरने न देती हों।
- सखियों के अपने स्वार्थ/हित हों।
- बेअसर सहयोगिनियां, जो सही मुद्दे न उठाती हों। गांव वाले उन्हें स्वीकार न करते हों।
- जानकारी का अभाव हो।
- सबको आपस में जोड़ने वाला तत्व न हो और नेतृत्व भी ठीक न हो। जो संघ सिर्फ़ किसी मुद्दे पर जुड़े हों।
- जहां सहयोगिनियां दफ्तरी काम में ही व्यस्त रहती हों।
- निष्क्रियता और अपने आपसे पूरी तरह संतुष्टि।
- अनेक नेता हों।

अपने भीतर झांकना

कुछ सालों काम करके महिला समाख्या ने अपना मूल्यांकन किया। उससे जानकारी मिली कि गांव के महिला संघ उतने मज़बूत और सक्रिय नहीं हैं जितनी कल्पना की थी। सिर्फ़ सशक्त सहयोगिनी और सखी होना काफ़ी नहीं है। गांव के स्तर पर जब आम औरतें सशक्त होंगी, जब उनके बीच से नेतृत्व उभरेगा तभी कार्यक्रम सफल माना जा सकता है। इस प्रकार सभी राज्यों में सीधे धरातलीय संघों पर ध्यान केन्द्रित करने का फ़ैसला लिया गया। सहयोगिनियों के काम और भत्ते तो लगभग सभी राज्यों में एक हैं, लेकिन सखियों की भूमिका और भत्ते उनकी अपनी सामूहिक समझ और

सशक्तता के आधार पर अलग-अलग हैं। गुजरात में महिला संघों की स्वायत्तता का और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का सवाल भी उठाया गया। 1993 में राष्ट्रीय मूल्यांकन में महिला संघों को सशक्त करने का निर्णय लिया गया था। उन्हें सशक्त करने के रास्ते/मुद्दे जगह के हिसाब से अलग-अलग हो सकते हैं। विभिन्न राज्यों और उनके विभिन्न ज़िलों की समस्याएं अलग-अलग हैं। औरतें तभी एकजुट होती हैं और संघ मज़बूत होता है जब उनकी आपसी समझ एक जैसी हो। उनके सरोकार और मुद्दे साझे हों।

सशक्तता के रास्ते

साक्षरता

उत्तर प्रदेश में साक्षरता शिविरों के ज़रिए साक्षरता आगे बढ़ी। औरतों के बीच इसकी मांग बढ़ी। वे साक्षर होना चाहती थीं। उन्होंने सुविधाओं की मांग की। इस प्रकार सरकार की जनता के प्रति जवाबदेही को ललकारा गया। उनकी पढ़ाई की सामग्री भी उस जगह के हिसाब से बनती है। जैसे सहारनपुर में शारीरिक हिंसा की बात वाराणसी में पंचायती राज, टिहरी में पर्यावरण और बांदा में पानी की समस्या से जुड़े पाठ पढ़ाए जाते हैं। महिला संवेदी पठन सामग्री इस्तेमाल

की जाती है। जगह की समस्याओं के हिसाब से नई किताबें तैयार की जाती हैं। प्रौढ़ शिक्षा तथा किशोरियों की कक्षाएं भी औरतों को सशक्त करने का ज़रिया रही हैं।

बाल केन्द्र

देहाती औरतों को सशक्त करने के लिए उन्हें सहूलियतें देना भी ज़रूरी है। उन्हें बच्चों की देखभाल से कुछ समय के लिए फ़ुरसत दिलाई गई। जगह-जगह बाल देखरेख केन्द्र खुले। उनसे न सिर्फ़ बच्चों का स्वास्थ्य और पोषण स्तर सुधरा बल्कि माताओं के जीवन स्तर में सुधार आया। काम का बोझ, चिन्ता, तनाव कम हुआ। घर की आमदनी बढ़ी। ये सुविधाएं खुद संघ की औरतों ने मिलजुलकर विकसित कीं। कर्नाटक में भी इस दिशा में काफ़ी प्रगति हुई है।

राजनीतिक प्रक्रियाएं

पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण ने औरतों को आगे बढ़ने का एक अच्छा मौका दिया है। महिला समाख्या जी जान से इस मुद्दे पर काम कर रही है। महिला आधीनता के सवाल से निपटने का यह बहुत अच्छा ज़रिया है। यह सही है कि इस आरक्षण का फ़ायदा मर्द उठाने की कोशिश कर रहे हैं। पंचायत में अपनी पत्नियों को कठपुतली बनाकर बिठा रहे हैं। इसीलिए महिलाओं में राजनैतिक चेतना लाने की ज़्यादा जरूरत है। महिला समाख्या इस दिशा में कार्यशालाएं आयोजित कर रही है। महिला-संघ गांवों में दबाव समूह के रूप में भी काम कर रहे हैं, ताकि पंचायत सदस्य प्रभावशाली काम करें। औरतों को राजनैतिक मुद्दों पर सक्रिय करना अब महिला समाख्या के काम का हिस्सा बन गया है।

न्याय और आदर

महिला संघ की औरतें किसी भी शारीरिक हिंसा और अन्याय के मुद्दे पर उठ खड़ी होती हैं। न्याय और सम्मान पाने की लड़ाई औरतों के सशक्तीकरण का अहम् हिस्सा है। महिलाओं के साथ होने वाली शारीरिक हिंसा व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि सामाजिक समस्या है। उत्तरप्रदेश के सहारनपुर जिले में तो इस संघर्ष ने आन्दोलन का रूप ले लिया है। उत्तरप्रदेश के ही टिहरी क्षेत्र में शराबख़ोरी के खिलाफ़ आन्दोलन चल रहा है। इसी प्रकार के आन्दोलन की रपट कर्नाटक से भी मिली है। अब औरतें अदालतों, पुलिस और दफ्तरों तक जाती हैं। यदि फिर भी बात नहीं बनती तो खुद शराब की दुकानों, कारखानों पर धरने देती हैं। जन आन्दोलन चलाती हैं। इस प्रकार महिला समाख्या के महिला संघ कई रास्तों से सशक्तीकरण पाने की कोशिश कर रहे हैं। सशक्तीकरण कोई मंज़िल नहीं, एक यात्रा है। महिला समाख्या की शक्ति यात्रा जारी है। □

अधिकार उन्हीं को मिलते हैं
जो संघर्ष करते हैं।

पिंजरे का पंछी

मृदुला

यह कुछ साल पहले की सत्यकथा है। नेमी विरमगांव में एक बहुत बड़ा धनी घराना था। उसकी सन्तान में एक बेटा और एक बेटी थी। बेटी का नाम विमला और बेटे का नाम गोविन्द था। बेटी की शादी बहुत बड़े व अच्छे खानदान के पढ़े-लिखे लड़के के साथ करा दी। दो साल बहुत अच्छी तरह बीते फिर उसके पति को लकवा हो गया। लकवा एक ऐसा रोग है जिसकी दवादारू में बहुत पैसे खर्च हो जाते हैं। ससुराल में जब मर्द कमाता है तभी तक बहुओं की कद्र होती है, लेकिन जिसका मर्द बीमार हो। उसकी दवा के लिए बहुत सारा पैसा खर्च हो, तो सभी मदद करने से आंखें चुराने लगते हैं।

कठिनाइयों का दौर

यही विमला की ज़िन्दगी में हुआ। उसके पति जमनादास की बीमारी का खर्च, लड़की के कॉन्वेंट स्कूल का खर्च-अब घरवालों को बोझ लगने लगा। झगड़ा, गाली-गलौज, ताने आम बातें हो गईं। विमला घर का पूरा काम करती, फिर भी कोई उसकी मदद करने को तैयार नहीं। विमला ने घर का खर्च चलाने के लिए अपने जेवर भी बेच डाले, लेकिन तीन महीने का घर का किराया उसके सिर पर चढ़ गया। घर-मालिक घर खाली कराने के लिए झगड़ा करने लगा। अब अकेली औरत छोटी बच्ची, बीमार मर्द के साथ कैसे संघर्षों का सामना करती। विमला इतनी पढ़ी-लिखी नहीं थी कि नौकरी करके अपना घर चला सके। बड़े घर में औरत को घूंघट के अंदर क़ैद करके रखा जाता है। उनके हाथ में कोई सत्ता नहीं रहती कि बाहर जाकर कुछ काम कर सकें। घर से बाहर कदम रखते ही उस पर बुरी नज़र डालने वालों की कमी नहीं होती।

एक फैसला : एक सफलता

फिर भी विमला ने मन में ठान लिया कि वह कुछ घरेलु रोजगार ही करेगी। किसी के पास भीख के लिए हाथ नहीं फैलाएगी। उसने अपने पिताजी से एक सिलाई मशीन रक्षाबंधन के तोहफे में मांगी। मशीन पर अच्छे डिजाईन के कपड़े सीने लगी और बड़े स्टोर में जाकर बेचना शुरू किया। उसकी ईमानदारी और मेहनत रंग लाई। धीरे-धीरे उसे अच्छा काम मिलने लगा। अब उसका काम इतना बढ़ गया कि उसने दो-तीन लड़कियों को काम के लिए रख लिया। नई मशीनें खरीदकर रेडीमेड गारमेंट की फेक्ट्री लगा ली। उसका नाम उसने विमल रेडीमेड गारमेंट रखा। बहुत सारा

पैसा उसके पास हो गया। लड़की पूजा अब बड़ी हो गई थी। धनवान घराना और पढ़ी-लिखी, सुन्दर लड़की देखकर उसके विवाह के प्रस्ताव आने लगे, लेकिन विमला ने सब प्रस्ताव ठुकरा दिए। पूजा डॉक्टर बनना चाहती थी। विमला भी यही चाहती थी कि वह कुछ बन दिखाए। विमला जानती थी कि हमारा समाज एक पुरुष प्रधान समाज है। (यदि पुरुष पर कोई मुश्किल आ पड़े तो औरत अपनी मेहनत और लगन से उसका मुकाबला कर सकती है। घर की जिम्मेदारी आसानी से संभाल सकती है। □

'नुशू': औरतों की अपनी भाषा

जुही

चीन के दक्षिण-पश्चिम भाग में हुनान प्रांत है। यहां की औरतें सदियों तक 'नुशू' लिपि का इस्तेमाल करती थीं। 'नुशू'-केवल औरतों की लिपि। सिर्फ़ औरतों की भाषा। उनकी अभिव्यक्ति का साधन। उनके प्रतिवाद का प्रतीक। ज़्यांगयोंग प्रांत में शांगज़्यांगजू ज़िला है। इस ज़िले की रोज़मर्रा की ज़िंदगी में औरतों की साहित्यिक संस्कृति इस हद तक प्रचलित थी कि, चीन की मुख्य लिपि को वहां 'नांज़ी' के नाम से जाना जाता था। 'नांज़ी' यानी मर्दों के शब्द। नुशू की अपनी एक अलग लिपि थी। इसे जानने, पढने, लिखने वाली सिर्फ़ औरतें थीं। इसलिए शांगज़्यांगजू की औरतों के पास अपनी ज़िंदगी की सच्चाई बयान करने का अधिकार और आज़ादी दोनों थीं। रिवाज के अनुसार औरतों को नांज़ी में पढ़ने का चलन नहीं था। यही वजह थी कि वह उन तमाम किताबी मूल पाठों की शिक्षा से बची थीं जो औरतों को कमतरी और ग़ैरबराबरी का सबक सिखाते हैं। न ही औरतों को मर्दों के सामने अपने संघर्षों की दास्तान का बखान करने के लिए जूझना पड़ता था। पर इसका एक दुखद पहलू भी था।

नुशू की अपनी एक अलग लिपि थी। इसे जानने, पढ़ने, लिखने वाली सिर्फ़ औरतें थीं। इसलिए शांगज़्यांगजू की औरतों के पास अपनी ज़िंदगी की सच्चाई बयान करने का अधिकार और आज़ादी दोनों थीं।

कठिनाइयों का दौर

यह भाषा मर्दों की नहीं थी इसलिए, इसमें लिखी रचनाओं का उस समय की प्रधान और प्रचलित मान्यताओं पर असर नहीं था। पर फिर भी औरतें इन सभी तमाम सामाजिक बंधनों के बावजूद अपना काम निकालने के तरीके खोज ही लेती थीं। औरतों के आपस के रिश्ते भी बहुत मज़बूत थे। नुशू के माध्यम से एक दूसरे से उनके जज़बाती और आर्थिक रिश्ते प्रगाढ़ होते थे और इन रिश्तों में वे अपने जीवन के दुख-दर्द, ग़ैरबराबरी को बांट कर विरोध करती थीं।

नुशू लिपि लगभग एक हज़ार साल तक प्रचलित रही। सिलाई-कढ़ाई करते हुए गर्मियों के दिनों में छतों पर और सर्दियों में आग तापती हुई औरते नुशू में गीत रचती और गाती थीं। लगभग सभी औरतें इस भाषा को पढ़ सकती थीं। हालांकि इसे लिखने वाली औरतों की संख्या काफ़ी कम थी। बहुत-सी औरतों को इसमें लिखे गीत, पंक्तियां और श्लोक मुंहजुबानी याद थे।

1989 में चीन में क्रांति आई। सामाजिक बदलाव आए। कम उम्र की औरतें अब नुशू नहीं सीखती थीं। जैसे-जैसे पुरानी पीढ़ी खत्म होती गई, नुशू में लिखने वाली लेखिकाओं की तादाद कम होती गई। धीरे-धीरे नुशू भाषा लुप्त हो गई। चीन में रिवाज के अनुसार औरतों की पसंद की रचनाएं, लेख, कहानियां उनके मरने पर उनके साथ दफना

दिए जाते थे। मानना था कि परलोक में औरतें उसका मज़ा ले सकेंगीं पर इसी की वजह से उन्नीसवीं सदी के पहले की कोई भी रचना हमें नहीं मिलती। मौजूदा रचनाएं जो हमें मिली हैं इसी शताब्दी के रचनाकारों की हैं। कागज़, कपड़े और पंखों पर लिखी यह रचनाओं में औरतों की आत्मकथाएं, बहनचारे की कसमें, संवेदनाओं और प्रत्यारोपों की चिट्ठियां, दुल्हनों के लिए किताबें, स्थानीय और राष्ट्रीय घटनाओं का ब्यौरा, प्रार्थनाएं लड़कियों के लिए कन्फ्यूशियस के मतों का उल्लेख और चीनी लोककथाएं आदि शामिल हैं।

नुशू : प्रतिशोध की भाषा

नुशू-विरोध की भाषा है। इस भाषा की लेखिकाओं को भी अन्य चीनी औरतों की तरह शारीरिक और मानसिक प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ता था। ऐसा तब-तब होता था, जब-जब वे समाज में फैले, ग़ैरबराबरी के ढांचें को बदलना चाहती थीं। शांगज़्यांगजू की औरतों को मर्दों के इतिहास ने नज़रअंदाज़ किया। इन औरतों ने अपना खुद का इतिहास रचा। अपना ज्ञान बांटा और सदियों तक खुद को मां से बेटी तक विरासत में मिलने वाली साहित्यिक परंपराओं के केंद्र-बिन्दु पर रखा। □

मूल लेख : कैथो सिल्बर
साभार : विमेन इन एक्शन 3/92
आईसिस इंटरनेशनल, मनीला

न्याय की लड़ाई में फ़तह

वीणा शिवपुरी

राजस्थान के भटेरी गांव में 22 सितम्बर 1992 को महिला विकास कार्यक्रम की साथिन भंवरी के साथ सामूहिक बलात्कार हुआ। भंवरी बाल-विवाह के ख़िलाफ़ चल रहे सरकारी अभियान में काम कर रही थी। उसने अपना फर्ज़ निभाते हुए एक बाल-विवाह को रोका। परिणामस्वरूप रामकरण गूजर ने अपने कुछ साथियों के साथ बलात्कार के रूप में बदला लिया। गांव और ज़िला स्तर पर सरकारी तंत्र ने ढिलाई बरती। समय पर रपट नहीं लिखी गई, डाक्टरी जांच में देरी हुई, सबूत नष्ट कर दिए गए। भंवरी को न्याय दिलाने की तुरन्त कार्रवाई की जगह उसे ही झूठा ठहराया गया।

एक घटना-एक आन्दोलन

यह घटना अपने आप में पहली या आखिरी नहीं है, परन्तु इसने देशव्यापी बहस छेड़ी और कई सवाल उठाए। हर कामकाजी औरत को चेताया कि यह उसके साथ भी हो सकता है। विशेषतः वे औरतें जो किस न किसी रूप में रूढ़ियों के ख़िलाफ़ काम कर रही हैं। इसी से जुड़ा मुद्दा उठा– हर कामकाजी औरत के साथ उसके काम की जगह पर होने वाला यौन-अत्याचार। चाहे वह सिर्फ़ छेड़छाड़ हो या बलात्कार। एक भद्दे इशारे से लेकर बलात्कार के बीच यौन अत्याचार के बहुत से रूप होते हैं। वे सभी, औरतों को शारीरिक और मानसिक तकलीफ़ें पहुंचाते हैं। उनके विकास में बाधक होते हैं। काम करने के उनके बुनियादी हक का हनन करते हैं। यानी हर तरह से उनकी प्रगति को रोककर उन्हें पिछड़ेपन की तरफ धकेलते हैं।

जनहित याचिका

इन सारे मुद्दों से प्रेरित होकर कुछ सक्रिय सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा ग़ैर सरकारी संगठनों ने एक जनहित याचिका दायर की, जिसमें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के तहत कामकाजी औरतों के बुनियादी अधिकारों को लागू करने की मांग की। वे अधिकार हैं 'जेंडर समानता', 'जीवन तथा स्वतन्त्रता कारक' तथा 'कोई भी पेशा अपनाने या व्यवसाय करने की आज़ादी'। ये सभी अधिकार तभी लागू हो सकते हैं, जबकि औरतें सम्मान से जीवन जी पाएं, सुरक्षित वातावरण में अपनी मर्जी का काम कर पाएं। बुनियादी अधिकारों की बहाली की

जरूरी शर्तें पूरी करना सरकार का फ़र्ज है। क़ानून बनाने तथा संशोधन लाने में समय लगता है। उस दौरान कानून के अभाव में, अनुच्छेद 32 के तहत उच्चन्यायालय दिशा-निर्देश जारी कर सकता है। याचक को तुरन्त राहत दिलाने का यह प्रभावकारी तरीका है।

अन्य मददगार अनुच्छेद/अन्तर्राष्ट्रीय समझौते

अनुच्छेद 14, 19 और 21 के अलावा अन्य कई अनुच्छेद भी इस सामाजिक बुराई को ख़त्म करने के लिए कानूनी बुनियाद देते हैं।

- अनुच्छेद 15 धर्म, नस्ल, जाति, लिंग तथा जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव की मनाही करता है। साथ ही औरतों व बच्चों के लिए ख़ास प्रावधानों की इजाज़त देता है।
- अनुच्छेद 42 में काम के मानवीय हालात तथा प्रसव-सुविधाओं के लिए सरकार को निर्देश दिए गए हैं तथा यह भी कहा गया है कि कोई भी रीति-रिवाज जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो, बंद कर दिया जाए।
- अनुच्छेद 51 अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की बात करता है। अनुच्छेद 253 में कहा गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए संसद को नए कानून बनाने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 73 में स्पष्ट किया गया है कि जब तक संसद कानून बनाए तब तक किसी भी बुराई को ख़त्म करने के लिए संघीय प्रशासनिक शक्ति उपलब्ध होती है।

इस प्रकार अनुच्छेद 32 के तहत बुनियादी अधिकारों की बहाली के लिए न्यायालय की ताकत तथा संघीय ताकत को मिलकर कामकाजी औरतों को सुरक्षा देनी होगी।

एक बड़ा कदम

इन सभी अनुच्छेदों की मदद से चली क़ानूनी बहस के दौरान न्यायालय के निर्देश विकसित हुए। न्यायधीशों ने माना कि जैंडर-समानता तथा यौन-उत्पीड़न के सभी रूपों की रोकथाम का मुद्दा बुनियादी मानवीय अधिकारों की सुरक्षा के दायरे में आता है। अतः उन्होंने सभी काम के स्थानों, संस्थाओं में पालन किए जाने के लिए दिशा निर्देश जारी किए। न्यायालय का यह फैसला औरतों के विकास का रास्ता रोशन करेगा।

- न्यायालय के अनुसार यौन उत्पीड़न के सभी रूपों की रोकथाम करना संस्था के मालिक या अन्य ज़िम्मेदार व्यक्तियों का फ़र्ज होगा। साथ ही वे औरतों को सुरक्षा देने, ऐसे मामलों को रोकने, निपटाने तथा उन पर कार्रवाई करने के लिए भी ज़िम्मेदार होंगे।
- निर्देशों पर सही अमल के लिए यौन उत्पीड़न की परिभाषा भी तय की गई:—
  (अ) शारीरिक सम्पर्क और पहल
  (आ) यौन उपकार की मांग या प्रार्थना
  (इ) अश्लील सामग्री दिखाना, अथवा
  (उ) ऐसा कोई भी शारीरिक, शाब्दिक या गैर-शाब्दिक यौन-व्यवहार जिसका महिला स्वागत न करती हो।

- **रोकथाम के क़दम**

1. ऊपर दी गई परिभाषा के अनुसार यौन-उत्पीड़न की मनाही की जानकारी काम की जगह पर उचित तरीकों से बताई जाए, प्रकाशित हो तथा सबके बीच प्रसारित की जाए।
2. संस्था में व्यवहार तथा अनुशासन के नियमों

के तहत यौन-उत्पीड़न की मनाही के नियम को भी शामिल किया जाए तथा नियम तोड़ने के लिए उचित सज़ा का प्रावधान हो। यह सरकारी व अर्धसरकारी दोनों क्षेत्रों पर लागू होगा।

3. निजी मालिकों को औद्योगिक रोज़गार-कानून 1946 के तहत अपने स्थाई आदेशों में यह निषेधाज्ञा भी शामिल करनी होगी।
4. काम की जगह पर औरतों के विरूद्ध वातावरण न बनने देने के लिए काम, विश्राम, स्वास्थ्य तथा सफ़ाई की उचित कार्य परिस्थितियां मुहैया कराई जानी चाहिए।

- **कानूनी कार्रवाई**
  जहां कहीं ऐसा अपराध होता है, जो भारतीय दंड संहिता या अन्य किसी कानूनी दायरे में आता है तो मालिक को उचित कानून अधिकारी को सूचित करना चाहिए।
  उन्हें यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अपराध की शिकार औरत या गवाहों को तंग न किया जाए। उस महिला को अपना या यौन-अत्याचारी का तबादला करवाने के चुनाव का अधिकार होना चाहिए।

- **अनुशासनात्मक कार्रवाई**
  संस्था के मालिक या अधिकारी को अपने सेवा नियमों के हिसाब से यौन अत्याचारी के ख़िलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी चाहिए।

- **शिकायत प्रक्रिया**
  हर संस्था में एक ऐसा तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए कि महिला अपनी शिकायत बिना डर के बता सके। उस शिकायत पर एक निश्चित समय के भीतर कार्रवाई हो।

- **शिकायत समिति**
  जहां जरूरत हो एक शिकायत समिति बनाई जाए। एक सलाहकार या अन्य सहायक सेवाएं मौजूद हों। जो गोपनीयता के साथ काम करें। शिकायत समिति की अध्यक्ष कोई औरत हो। यह समिति हर वर्ष सम्बन्धित सरकारी विभाग को अपनी रिपोर्ट दे।

- **कामगारों की पहल**
  यौन-उत्पीड़न के मुद्दे कामगारों की बैठकों में उठाए जाएं। अन्य सभी उचित मंचों पर उनकी चर्चा हो। कामगार तथा मालिकों की बैठकों में भी इन पर बात हो।

- **जागरूकता**
  इस सम्बन्ध में महिला कर्मचारियों के अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए कदम उठाए जाएं।

- **बाहरी व्यक्ति द्वारा उत्पीड़न**
  यदि यह अपराध किसी बाहरी व्यक्ति ने किया है तो रोकथाम या कानूनी कार्रवाई के लिए महिला को पूरा सहयोग दिया जाए।

औरतों को कानूनी सुरक्षा देने के लिए महिला आंदोलन काम करता रहा है। उच्चतम न्यायालय का यह फैसला उस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। हालांकि भंवरी को अब तक न्याय नहीं मिला है, लेकिन व्यापक अर्थ में यह उसकी न्याय की लड़ाई में एक फ़तह है। □

मेरी कहानी-तुम्हारी कहानी

जुही

इन तीनों आप बीतियों से 'सुरक्षित' परिवारों के अंदर होने वाली ज़्यादतियों का पता चलता है। साथ ही कुछ मिथक भी टूटते हैं।

- परिवार में यौन हिंसा सिर्फ़ निम्न वर्ग में नहीं हैं।
- यह न तो कोई मानसिक बीमारी है न ही विकृत मानसिकता का नतीजा। यह पुरुषों के कठोर अहम् और यौनिक लालच की दास्तान है।
- यह अनपढ़-गरीब के अलावा, मध्यम और उच्च वर्ग में आम बात है।

आपबीती-एक

शमा एक ग़रीब परिवार में जन्मी। बाप मिल में चौकीदार था। घर में दो छोटे-छोटे भाई और बहन। शमा घरों में चौका बर्तन करती और परिवार के खर्चे में मदद करती। शमा की उम्र है सोलह वर्ष। कुछ दिन पहले शमा का बाप उसे बस्ती के डाक्टर के पास ले गया। पता चला शमा को सात माह का गर्भ है। बाप किसी भी कीमत पर गर्भ गिरवाना चाहता है। डाक्टर ने इंकार किया। मुहल्ले में बात फैल गई। शमा अपने दोनों भाई बहन को चिपटाए रोती हुई कहती है–

'बच्चा मेरे बाप का है।' बाप कहता न जाने किसका पाप है। दस कोठी का काम है। महिला समूह को खबर लगी। डराया-धमकाया। बाप फिर भी अपने गलती मानने को तैयार नहीं था। मुहल्ले वालों ने उल्टे शमा को ताने दिए। भीड़ छंट गई। बाप ने रातों-रात शमा की शादी कर दी। पता नहीं अब शमा का क्या हाल है। पर हां, बाप खुले-आम सिर उठाकर घूम रहा है।

आपबीती-दो

मीना की मां बारह साल की मीना को उसके चाचा के पास छोड़ गई कि शहर में बच्ची पढ़ लिख जायेगी, गांव में तो कुछ नहीं कर सकेगी। देवर प्राइवेट फर्म में मैनेजर था। उसकी अपनी बेटी भी मीना की उम्र की थी। कुछ माह बाद मां मीना को मिलने शहर आई। सब ठीक था। मीना खुश थी। मां देवर को हर महीने कुछ भेजती रहने का वादा करके चली गई। कुछ महीनों बाद मां को मीना की चाची का ख़त मिला। फौरन चली आओ। चाची ने बताया चाचा मीना और अपनी बेटी के साथ रोज़ बलात्कार करता है। चाची मना करती है तो उसे बुरी तरह मारता-पीटता है। घर की बात है खामोश रहने

के अलावा क्या कर सकते हैं? अब चाचा-चाची को घर से निकालना चाहता है, क्योंकि वह इस अन्याय का विरोध करती है। क्या करें?

आपबीती-तीन

रोमी तीन साल की थी जब उसका भाई उसके सामने अपने सारे कपड़े उतारकर खड़ा होता था। वह सहम जाती थी। आठ साल तक यह सिलसिला चलता रहा। भाई मंत्रालय में उच्च पदाधिकारी है। खूब-पैसा, इज्ज़त, रोब है। रोज़

रोमी को अपने साथ होटल ले जाता। अपने सहयोगियों के साथ मिलकर गंदी फ़िल्में देखता, शराब पीता। फिर सब मिलकर बलात्कार करते। रोमी की भाभी को जब यह पता चला तो उसने अपने पति को रोका। जब वह नहीं माना तो उसने ख़ामोशी तोड़ी। पुलिस में रपट लिखवाई। नाते-रिश्तेदारों से मदद मांगी। महिला समूह की मदद से पति को बंद करा दिया। मुकदमे का फ़ैसला होना अभी बाकी है। क्या होगा पता नहीं, पर कम से कम अन्याय का विरोध तो हुआ।

मिथक टूटे

इन तीनों आप बीतियों से 'सुरक्षित' परिवारों के अंदर होने वाली ज़्यादतियों का पता चलता है। साथ ही कुछ मिथक भी टूटते हैं।

- परिवार में यौन हिंसा सिर्फ़ निम्न वर्ग में नहीं हैं।
- यह न तो कोई मानसिक बीमारी है न ही विकृत मानसिकता का नतीजा। यह पुरुषों के कठोर अहम् और यौनिक लालच की दास्तान है।
- यह अनपढ़-गरीब के अलावा, मध्यम और उच्च वर्ग में आम बात है।

आज इन सवालों पर हर जगह खुलकर चर्चा हो रही है। औरतों को एहसास हो रहा है कि जोर-ज़बरदस्ती सहना उनकी फितरत नहीं हैं। वे इंसान हैं और उन्हें अपने ऊपर होने वाली हिंसा का डटकर विरोध करना होगा। आंकड़ों से हमें पता चलता है कि ऐसे बलात्कारी पढ़े-लिखे, ग़रीब-अमीर, इंजीनियर, अफ़सर कुछ भी हो सकते हैं। ये पागल नहीं होते। ये हमारे आसपास, घर के भीतर रहने वालों में ही छुपे होते हैं।

यह पितृसत्तात्मक ढांचे के अंदर होने वाला एक और अत्याचार है। औरत को शारीरिक ताक़त से अपने वश में करना। अपनी सत्ता का प्रदर्शन करना। यह ऐसा करने का तरीक़ा मात्र है। बलात्कारी ऐसा करके अपनी ताक़त दिखाता है और उसका दुरुपयोग कर अपनी मनमानी करता है।

पर खामोशी क्यों?

सवाल यह उठता है कि इस विषय पर समाज चुप्पी क्यों साधे है। इस पर से पर्दा उठाने की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ औरतों-बच्चियों पर ही क्यों? क्यों घरेलू मामला कहकर इसे दबाया जाता है। जवाब है-क्योंकि परिवार पितृसत्ता के ढांचे का मुख्य स्तंभ है। इसी से पितृसत्ता पनपती है और पुरुष अपनी इस सत्ता को नहीं छोड़ना चाहते। घर की औरतें अपनी मजबूरी के कारण चुप रहती हैं। अगर कुछ बोलती हैं तो उन्हें चुप करा दिया जाता है, पर अधिकांश समय औरत/लड़की इसलिए खामोश रहती हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि कोई उनका ऐतबार नहीं करेगा। अदालत, पुलिस कोई उनकी मदद को नहीं आयेगा और ऐसा ही होता है।

अब वक्त आ गया है कि खामोशी तोड़ी जाए। परिवार के अंदर हो रही मनमानी बंद हो। इसके लिए जरूरी है कि सबसे पहले औरतें खामोशी तोड़ें। अपने घर में हो, चाहे पड़ौस में ऐसी घटना के बारे में बात करें। अगर कोई बच्ची इस बारे में बोलती है तो उसकी बात सुनें। उसे सहारा दें। उसे चुप न कराएं। स्कूलों और घरों में ऐसा माहौल बनाएं जहां पारिवारिक हिंसा पर बात हो सके। ऐतबार करना सीखें।

याद रखिए इस बातचीत से घर की इज्ज़त दांव पर नहीं लग रही और फिर जब घर में बच्चियों/औरतों पर यह अत्याचार हो रहा है तो फिर हम कौन सी इज्ज़त बचाने का दावा कर रहे हैं। □

गांव की बदली हुई हालत बहुत अच्छी लगी,
देखकर हर हाथ में कापी-किताब, अच्छी लगी।
गांव के स्कूल में बैठी हुई लड़कों के बीच,
मुझको वह पढ़ती हुई लड़की बहुत अच्छी लगी।
फूस की वह झोंपड़ी और लालटेन की रौशनी में,
लिखती हुई बेटे को खत, अम्मा बहुत अच्छी लगी।
उंगलियों से रेत में शायद वह कुछ लिख सी रही थी,
मुझको मजदूरन की यह कोशिश बहुत अच्छी लगी।
'बेटी से तेरा वंश चलेगा' कान में उसने कहा,
बात साधु की मुझे पहली दफ़ा सच्ची लगी।
तोड़कर पत्थर कहीं बैठी वह एक पल छांव में,
पढ़ती हुई अख़बार वह औरत बहुत अच्छी लगी।
यूं तो हम हर रोज़ ही महफ़िल में जाते हैं मगर
मुझको साक्षरता की यह महफ़िल बहुत अच्छी लगी।

यासमीन अहमद (अनौपचारिका अक्तूबर '97)

घरेलू नुस्खे

खुद को दूसरों की सेवा में खपाते रहे–हमने सोचा ही नहीं कि शरीर हमारा भी है–हमें भी जीना है अपने लिए। अपने ही आपसे अनजान रहते हुए सुख बांटते रहे–मशीन की तरह खटते-लगातार घिसते हुए। दूसरों को परवाह क्यों हो-हमें खुद ही अपनी सुध लेनी होगी न! ज़िन्दगी के हजारों कामों को अन्जाम देती बहनों को न जाने कितने रोग घेरे रहते हैं–उन्हें पहचानने की, उनसे बचने की भी चिन्ता उन्हें नहीं रहती–इतने साधन भी कहां हैं। सो यह एक शुरूआत है–कोशिश है–घरेलू उपचारों की मदद से अपनी सेहत संवारने और बचाने की। घर में ही, काम-काज के दौरान, खान-पान में कुछ ऐसी चीजें, आदतें जिन्हें अपनाकर हम स्वस्थ रह सकती हैं।

लहसुन

क़रीब-क़रीब हर रसोईघर में लहसुन मिल ही जाता है। लहसुन के औषधीय गुणों के बारे में भी अधिकतर लोग जानते हैं, परन्तु यह कम ही लोगों को पता है कि लहसुन स्त्री-रोगों में भी कितना फ़ायदेमंद है। जैसे योनि में खुजली, जलन, बदबूदार स्राव, आदि तकलीफ़ों में लहसुन से लाभ होता है। हल्के हाथ से लहसुन की कली का छिलका उतार लें। ध्यान रहे उसमें नाखून न गड़ने पाए वरना उससे जलन हो सकती है। रात को सोने से पहले इस कली को योनि के अंदर रखकर सुबह निकाल लें। इस क्रिया को 15 दिन तक करना चाहिए। रोगी महिला का किसी पुरुष से शारीरिक संबंध है तो उस पुरुष को भी लहसुन की एक-एक कली दिन में तीन बार खानी चाहिए। रोज़ एक कली लहसुन खाना कमज़ोरी, उच्च रक्तचाप तथा बदहज़मी में लाभदायक है। ज़हरीले कीड़े काटने पर उस जगह लहसुन पीसकर लगाओ। कान के दर्द में इसके रस की कुछ बूंदें डालने से आराम मिलता है।

भिण्डी

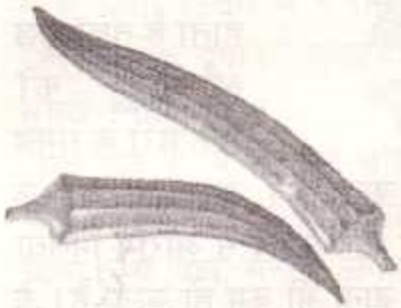

धात की बीमारी के कारण योनि से बदबूदार पानी जाने और जलन होने पर चार कच्ची भिण्डियां सुबह खाली पेट खानी चाहिए। योनि के बाहर और जांघों पर लाली, सूजन आना, जलन और मवाद पड़ जाने पर भिण्डी के अन्दर के चिकने पदार्थ का उस जगह पर लेप करना चाहिए। जलन के साथ रुक-रुक कर पेशाब आने की बीमारी में कच्ची भिण्डी खाने से फ़ायदा होता है।

हल्दी

सब जानते हैं कि हल्दी खाना पकाने के मसाले में काम आने के अलावा एक अच्छी कीटाणु निरोधक भी है। योनि में होने वाले किसी भी प्रकार के संक्रमण को यह दूर कर देती है। जैसे-बदबूदार सफेद पानी का जाना, सूजन, पेशाब में जलन या रुक-रुक कर अथवा ज़्यादा पेशाब आना आदि में फ़ायदेमंद है। बीस ग्राम कच्ची हल्दी, रोज़ खाकर पानी पी लेना चाहिए। एक हफ्ते तक ऐसा करें। गुर्दे में पथरी के लिए 25 ग्राम कच्ची हल्दी की ताजा गांठ को पीसकर 100 ग्राम शहद के साथ मिलाकर खाली पेट खाना चाहिए। 10-15 दिन खाते रहने से पथरी गल जायेगी।

शरीर पर हल्दी लगाना और 5 ग्राम हल्दी का चूर्ण रोज फांकना जच्चा के लिए अच्छा होता है।

अदरक

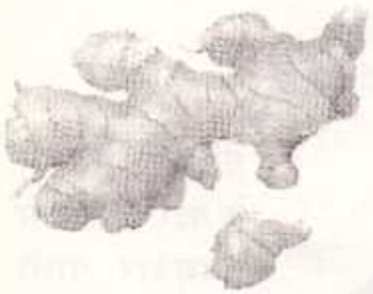

कुछ औरतों को माहवारी के दौरान काफ़ी दर्द होता है तथा कुछ औरतों को माहवारी के समय पतला काला खून जाता है। दस ग्राम अदरक पीसकर काढ़ा बनाकर पीने से दर्द से आराम मिलता है और काले खून का जाना भी कम हो जाता है। ये पाचन में तो सहायक है ही सर्दी, बुखार, खांसी, बलगम में भी फ़ायदेमंद है।

गेंदा

माहवारी के समय दर्द, अनियमित माहवारी और माहवारी में ठीक से खून न जाना आदि बीमारियों में पीले गेंदे के फूल बहुत फ़ायदा पहुंचाते हैं। 10 ग्राम फूल की पंखुड़ियों का काढ़ा बनाकर सुबह खाली पेट दो चम्मच भरकर पी लेना चाहिए। कम से कम 5 दिन तक पीयें। इसके अलावा पेट के अंदर घाव हो जाने पर काढ़ा बनाकर पीने से लाभ होता है। शरीर पर कहीं भी घाव हो जाने, कट जाने या चोट लगने पर गेंदे के पत्ते पीसकर उस जगह लगाना चाहिए।

कीकर

कीकर के पेड़ सड़कों के किनारे पर आमतौर पर दिखाई देते हैं। इस पर पीले रंग के फूल खिलते हैं। माहवारी के समय अगर ज़्यादा खून जाता है तो इसके फूलों से बनाई दवा खाने से फ़ायदा होता है। 5-6 फूलों की पंखुड़ियां पीसकर उसके रस में 2 चम्मच खांड मिलाकर पानी के साथ दिन में एक बार लेना चाहिए। योनि में खुजली, धात की बीमारी आदि में इसके पत्ते लाभकारी हैं।

250 ग्राम पत्ते, 100 ग्राम मिश्री पीसकर इसकी 5 बराबर मात्रा बनाएं। लगातार 5 दिन तक 1-1 मात्रा सुबह खाली पेट खानी चाहिए।

मकोईया

इसका पौधा छोटा होता है। इसमें सफ़ेद रंग के फूल आते हैं जो देखने में बिल्कुल मिर्च के फूलों जैसे लगते हैं।

बच्चेदानी या शरीर के किसी भी भाग में सूजन आ गई हो तो मकोईया का साग बनाकर खायें। एक हफ्ते में दो या तीन बार के हिसाब से लगातार एक महीने तक साग खाते रहने से लाभ होता है।

सूजे हुए भाग पर मकोई के पत्ते पीसकर लगाना चाहिए। पेट-दर्द, जलन आदि में इसकी सब्जी खाने से आराम मिलता है। इसका सूखा फल जच्चा के लिए बहुत गुणकारी है। □

हमारा पन्ना

खिलाड़ी अम्मा

खेलकूद में नहीं अनाड़ी
हमारी अम्मा बड़ी खिलाड़ी
बहुत खेल उन्हें आते हैं
बैट बॉल उन्हें भाते हैं
दौड़ में कैसे फरवट भागे
रस्साकशी में सबसे आगे
पेड़ पे चढ़ने से न डरती
मछली सी तैराकी करती
सतोलिया हो या गिल्ली डन्डा
ऊंचा रहता उनका झन्डा
हम बच्चे खिलाड़ी मान लिया है
अम्मा को गुरु मान लिया है

चतुर बेटी

शशि पाठक

एक लकड़हारा था। वह बहुत गरीब था। सम्पत्ति के नाम पर उसके पास एक मरियल, लंगड़ा घोड़ा तथा बूढ़ा गधा था और एक थी कुल्हाड़ी। उसकी नौ वर्ष की एक बेटी भी थी जिसका नाम आइना कोज था। वह बहुत चतुर, विनम्र और बुद्धिमान थी। एक दिन लकड़हारे ने अपने लंगड़े, मरियल घोड़े पर लकड़ी का गट्ठर लादा और बाजार में बेचने चल दिया। बहुत देर तक उसके पास कोई ग्राहक नहीं आया तो वह निराश हो गया। वह लौटने ही वाला था कि तभी एक ठग की नजर उस पर पड़ी। ठग ने बूढ़े लकड़हारे से पूछा,–

"ऐ बूढ़े, लकड़ियां बेचोगे?"

लकड़हारा प्रसन्न होते हुए बोला,–हां, हां, बेचनी है।

"कितने में बेचोगे?"

"एक चांदी के रुपये में।"

"अच्छा, इसी कीमत पर, लकड़ियां जिस हालत में हैं, उसी हालत में बेचोगे।

"हां-हां बेच दूंगा।" लकड़हारे ने उसकी बात को समझे बिना कहा।

"तब ठीक है, ये लो एक चांदी का रुपया"–इतना कहकर वह ठग घोड़ा सहित लकड़ी लेकर चल दिया। ये देख गरीब लकड़हारा रोने चिल्लाने लगा। भीड़ इकट्ठी हो गई। ठग जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "ओ बूढ़े, चिल्लाता क्यों है।" लकड़हारे द्वारा विरोध करने पर ठग उसे खींचता हुआ काजी के पास ले गया। सारी बातें सुनकर काजी ने भी लकड़हारे को डांटते हुए कहा कि तुम्हें अपने वायदे के अनुसार लकड़ी घोड़ा सहित ही देनी पड़ेगी।"

लकड़हारा असहाय सा घर वापस आ गया। अपने पिता को उदास देख, उसकी बेटी आइना कोज ने पूछा तो लकड़हारे ने बाजार में जो कुछ घटित हुआ था सब कुछ बता दिया।

दूसरे दिन पिता से आज्ञा लेकर, आइना कोज बूढ़े गधे पर लकड़ियों का गट्ठर लाद कर बाजार को चल दी। वह उसी ठग का इन्तजार करने लगी। थोड़ी देर बाद उसे वह ठग दिखाई दिया। पिता के बताए अनुसार उसकी लम्बी-लम्बी दाढ़ी थी। उसने एक लम्बा चोगा भी पहन रखा था आते ही वह लड़की से बोला

"ऐ लड़की, लकड़ियां बेचेगी?"

"हां चाचाजान बेचूंगी।"

"कितने में?"

"दो चांदी के सिक्कों में।"

"क्या इतने दाम में, लकड़ियां जिस हालत में हैं, उसी हालत में बेचोगी?"

"अवश्य। पर दाम भी उसी हालत में लुंगी जिस हालत में वो हैं।"

"हां, मंजूर है।"

लड़की ने खुशी-खुशी लकड़ियों सहित, गधा उसे दे दिया। ठग ने भी दो चांदी के सिक्के निकाले लड़की की ओर बढ़ा दिए, परन्तु आइना कोज बोली, "ऐसे नहीं चचाजान, सिक्के जिस हालत में हैं उसी हालत में देने का वायदा किया था तुमने। भूल गये क्या?"

"क्या मतलब?"

"मतलब ये कि मुझे तुम्हारा हाथ भी चाहिए।"

आइना कोज के इतना कहते ही ठग भौंचक्का सा रह गया। वह उसे गालियां देने लगा। शोर-शराबा सुनकर भीड़ एकत्रित हो गई। काजी को बुलाया गया। सारी बातें सुनकर काजी ने ठग से कहा, "यदि तुम अपना हाथ बचाना चाहते हो तो दो चांदी के सिक्के लकड़ियों के और पांच सिक्के हाथ-छुड़ाई के बदले में लड़की को दो।"

लड़की सारे सिक्के अपनी फ्रॉक में समेटे, अपने पिता की बेइज्ज़ती का बदला लेकर घर आ गई। □

एक सुबह ऐसी भी होगी
मेरा अपना सूरज होगा
मेरी अपनी धरती होगी
मेरे हाथों में हंसते होंगे
इस धरती के फूल सारे
आंखों में आस पलती होगी
एक सुबह ऐसी भी होगी।

सुनीता ठाकुर

ऐसा झूला कब डलेगा
जिसको बांधने का ठिकाना
मैंने खुद ढूंढा हो
जिसकी रस्सी मैंने खुद गूंथी हो
और जिसके झोंटे मुझे उमंग दें।